रस
छन्द
अलंकार

डॉ० योगेन्द्रप्रताप सिंह
डॉ० सञ्जय कुमार सिंह

रस
छन्द
अलंकार

डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह
भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

संजय कुमार सिंह
वरिष्ठ प्रवक्ता
इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद

प्रकाशन परिवार
द्वारा प्रकाशित
तथा

लोकभारती पुस्तक विक्रेता तथा वितरक
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1
द्वारा वितरित

प्रकाशन परिवार द्वारा प्रकाशित
तथा
लोकभारती पुस्तक-विक्रेता तथा वितरक
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1
द्वारा वितरित

❖

द्वितीय संस्करण : 2010

❖

मुद्रक :
इण्डियन प्रेस प्रा० लिमिटेड
इलाहाबाद-2 द्वारा मुद्रित

मूल्य : 18.00

रस छन्द अलंकार

विषय-सूची

□□

भूमिका

भारतीय काव्यशास्त्र के मेरुदण्ड रस, अलंकार तथा छन्द हैं। संस्कृत साहित्य में इनके सम्बन्ध में ई० पू० शती से चर्चा होती रही है और आज तक ये सम्पूर्ण विषय साहित्य के अध्ययन एवं अध्यापन के अनिवार्य अंग बन कर चल रहे है। अलंकार के शब्दार्थ द्वारा उस कलात्मक भावार्थ वैभव का विधान है जिसमें कविता में दीप्ति पैदा होती है, रसविधान कविता के पाठक के लिए आस्वाद्यपूर्ण आनन्द है और छन्द मूलत: भाषिक लयात्मकता है जो सृजन कला के लिए मूलाधार का कार्य करता है। इस प्रकार रस, छन्द तथा अलंकार तीनों मिलकर काव्य-सृजन की सम्पूर्ण पीठिका तैयार करते हैं।

इस पुस्तक में रस, अलंकार तथा छन्द के महत्त्वपूर्ण पक्षों को ध्यान में रखकर उन्हें सरलतम रूप में समझाने का प्रयास किया गया है ताकि सामान्य छात्र के लिए भी वह बोधगम्य हो सके।

आशा नहीं, पूर्ण विश्वास है कि इस दिशा में आने वाली कठिनाइयों के निराकरण में पुस्तक के योगदान को स्वीकार किया जायेगा।

21. 11. 2006
(देवोत्थानी एकादशी)

योगेन्द्र प्रताप सिंह
संजय कुमार सिंह
41-ए/30, तिलक नगर
अल्लापुर, इलाहाबाद

रस

परिचय

रस के स्वरूप उसके अंग एवं उसकी विशेषताओं का वर्णन भारतीय काव्यशास्त्र में रस सिद्धान्त के अन्तर्गत किया गया हैं रस शब्द 'रस्यते-आस्वाद्यते' इस व्युत्पत्ति से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है आस्वाद्यमान या जिसका आस्वादन किया जाय। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से इसकी कई व्युत्पत्तियाँ हैं, वहाँ काव्य की दृष्टि से इसकी व्युत्पत्ति 'रसनं रसः आस्वादः' है अर्थात् यह श्रृङ्गारादि रसों के अर्थ को व्यक्त करता है। इस प्रकार रस मुख्यतः आस्वादन के अर्थ को सूचित करता है, अर्थात् जिसके द्वारा भावों का आस्वादन हो उसे रस कहते हैं—आस्वाद्यत्वाद्रसः। भरत मुनि ने रस को काव्यगत या कलागत तत्त्व मानकर इसे आस्वाद्य पदार्थ कहा था, जो बाद में 'आस्वाद की अनुभूति' का वाचक बना। काव्य ने सन्दर्भ में यह काव्यास्वाद की अनुभूति का पर्याय बना और कला के पक्ष में कलानुभूति का वाचक हुआ। सौन्दर्य शास्त्र एवं मनोविज्ञान की शब्दावली में कलानुभूति को ही सौन्दर्यानुभूति कहा जाता है।

रस के अंग—आचार्य भरत के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगद्रसनिष्पत्तिः। आचार्य विश्वनाथ कहते हैं—

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायी भावः सचेतसाम्।।

(साहित्यदर्पण, 3/11)

अर्थात् जब विभाव अनुभाव और संचारीभावों के द्वारा सहृदयों के हृदय में वासना रूप में स्थित स्थायीभाव पूर्ण परिपक्वावस्था को प्राप्त हो जाय तो उसकी संज्ञा रस होगी। अतः रस के चार अंग हैं—विभाव, अनुभाव, संचारीभाव और स्थायीभाव

भाव—भाव एव रसः अर्थात् भाव ही रस है। अर्थात् भाव रस के आधार हैं। भाव के दो भेद हैं—स्थायी और अस्थायी (संचारी)।

स्थायी भाव को स्पष्ट करते हुए आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि जिसे अविरोधी या विरोधी भाव अपने में तिरोहित करने में अक्षम होते हैं और जो आस्वाद का मूलं होता है, उसे स्थायी भाव कहते हैं—

अविरुद्धाविरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादांकुरकंदोऽसौ भावः स्थायीति सम्मतः।।

(साहित्य दर्पण 3/17)

वस्तुतः स्थायी भाव विरोधी या शत्रुभाव के द्वारा न तो नष्ट होता है और न मित्रभाव उसे अपने में मिला सकते हैं। यह उन्हें आत्मसात् कर लेता है। यह स्वयं अन्य भावों को दबा देता है, उनके द्वारा दबाया नहीं जाता। अस्थायी भाव आते हैं, मन में कुछ क्षणों तक रहते हैं और फिर गायब हो जाते हैं, परन्तु अवचेतन मन के अन्तराल में छिपने वाला भाव बहुत देर तक रहता है और इसीकारण वह स्थायी भाव के नाम से पुकारा जाता है। काव्य में वर्णित विभाव, अनुभाव, संचारीभाव के द्वारा पुष्ट किये जाने पर यही स्थायीभाव 'रस' के रूप में परिणत हो जाता है।

आचार्यों ने स्थायी भावों की संख्या सामान्यतः नौ मानी है—

	स्थायी भाव	रस
1.	रति	शृङ्गार
2.	हास	हास्य
3.	शोक	करुण
4.	क्रोध	रौद्र
5.	उत्साह	वीर
6.	भय	भयानक
7.	जुगुप्सा	वीभत्स
8.	विस्मय	अद्‌भुत
9.	शम (निर्वेद)	शान्त

इसके अतिरिक्त आचार्य विश्वनाथ ने वत्सल स्थायी भाव से उत्पन्न वात्सल्य रस तथा रूप गोस्वामी ने भगवद् रति स्थायी भाव द्वारा भक्ति रस की प्रतिष्ठा की है।

(ख) संचारी भाव—इसका नाम व्यभिचारी भाव भी है। व्यभिचारी या संचारी भाव रस का सहकारी कारण माना जाता है। व्यभिचारी शब्द वि + अभि + चर के रूप में व्युत्पन्न है। यहाँ विविधताका, अभि-अभिमुख्य एवं चर संचरण का बोधक है भरतमुनि कहते हैं कि—विविधमाभिमुख्येन रसेषु-चरंतीति व्यभिचारिणः। (नाट्यशास्त्र 6/26) अर्थात् विविध प्रकार के रसों की ओर उन्मुख होकर संचारणशील होने के कारण इन्हें संचारी भाव कहा जाता है।

आचार्यों द्वारा संचारी भाव के विवेचन के क्रम में इसकी तीन विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है—

1. स्थायीभाव का उपकारक होकर उनको दीपित करना तथा उन्हें रस दशा तक पहुँचाना।
2. स्थायीभाव के साथ इनका सम्बन्ध सागर तथा लहर की भाँति होता है।
3. स्थिर न रहना इनका स्वाभाविक गुण है।

आचार्यों द्वारा संचारियों की संख्या 33 मानी गयी हैं इसके अतिरिक्त आचार्य भानुदत्त ने 'छल' नामक चौंतीसवें तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'चकपकाहट' नामक पैंतीसवें संचारी भाव को स्वीकार किया है। अन्य के नाम इस प्रकार हैं—

निर्वेद, ग्लानि, शंका, श्रम, धृति, जड़ता, हर्ष, दैन्य, उग्रता, चिन्ता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विवोध, ब्रीड़ा, अपस्मार, मोह, मति, आलस्य, आवेग, वितर्क, अवहित्थ व्याधि, उन्माद, विषाद, औत्सुक्य, चापल्य।

विभाव—विभाव का अर्थ विशेष प्रकार का भाव है। रति आदि स्थायी भावों की उत्पत्ति के निमित्त या कारण होने से इसे विभाव कहते हैं।

काव्य में वर्ण्य विषय के मूलाधार को विभाव कहा जा सकता है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में विभाव को स्पष्ट करते हुए कहा है—विभावैराहृतो योऽर्थो

अर्थात् अर्थप्रतीति का मूलकारण ही विभाव है। उनके अनुसार विभाव का अर्थ विभान हैं। यह स्थायी तथा व्यभिचारी भावों का विशेष प्रकार से प्रतीति कराता है और इसका विभावन अभिनय के द्वारा होता है। अभिप्राय यह है कि वाचिक तथा आंगिक अभिनयों पर आश्रित अनेक अर्थों को विभावित या विशिष्ट रूप से ज्ञान कराने के कारण इसे विभाव कहते हैं—

बहवोऽर्था विभाव्यंते वागंगाभिनयाश्रयाः।
अनेन यस्मात् तेनायं विभाव इति संज्ञितः।।

(नाट्यशास्त्र 7/4/10)

आचार्य विश्वनाथ ने विभाव को स्थायी भावों का उद्‌बोधक कहा है—

रत्याद्युद्‌बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः।

(साहित्यदर्पण 3/29)

परम्परा से इसके दो भेद स्वीकार किये गये हैं—

1. आलम्बन विभाव
2. उद्दीपन विभाव

1. आलम्बन विभाव—जिस पर रस या भाव टिकता है उसे आलम्बन विभाव कहते हैं। यह भाव एवं रस का मूल हेतु होता है। प्रत्येक रस एवं भाव के

पृथक्-पृथक् आलम्बन होते हैं जिसका अवलंब लेकर रस उत्पन्न होता है उसे आलम्बन कहा जा सकता है।

यमालंब्य रस उत्पद्यते स आलंबन विभावः

आचार्यों ने इसको दो भागों में विभक्त किया है—

(क) विषयगत आलम्बन

(ख) आश्रयगत आलम्बन

जिसके द्वारा या जिसको देखकर भाव व्यापार प्रेरित हो या जाग्रत हो उसे विषय तथा जिसमें जाग्रत हो उसे आश्रय गत आलम्बन कहते हैं।

उदाहरण—

सीता को देखकर राम में रति स्थायी भाव का उदय

यहाँ सीता विषयगत आलम्बन तथा राम आश्रयगत आलम्बन हैं।

2. उद्दीपन विभाव—उद्दीपन को परिभाषित करते हुए हिन्दी के आचार्यों ने कहा कि—

रसहिं जगावै दीप ज्यों उद्दीपन है सोइ।

जिस प्रकार दीपक प्रकाश को दीप्त करता है उसी प्रकार उद्दीपन आलम्बन से सम्बद्ध भाव व्यापार को उद्दीप्त करने का कारण माना जाता है। वस्तुतः रस को उद्दीप्त या तीव्र करने वाला भाव उद्दीपन है—

यो रसमुद्दीपयति स उद्दीपन विभावः

उद्दीपन के अन्तर्गत आलम्बन की चेष्टाएँ तथा देशकाल आता है। इसके चार प्रकार हैं—आलंबन के गुण, आलंबन की चेष्टाएँ, उसका अलंकार एवं तटस्थ। आलंबन के गुण में उसका आंतरिक तथा बाह्य सौन्दर्य, चेष्टाओं में उनका हाव भावादि, अलंकरण में अंगराग और नूपुर आदि का धारण करना और तटस्थ में चन्द्रमा, उद्यान, मलयानिल, सरोवर आदि आते हैं।

अनुभाव—विभाव को भाव का कारण तथा अनुभाव को भाव का कार्य कहा जाता है। ये भावों के सूचक हैं। अनुभाव का अर्थ है—भाव के पीछे (अनु) उत्पन्न होने वाला। ये विभाव के बाद उत्पन्न होते हैं, इसलिए इन्हें अनुभव कहा जाता है। आचार्य भरत कहते हैं कि इसके द्वारा भावव्यापार प्रतीति का विषय बनता है—

अनुभावैस्तु गम्यते

वे पुनः बताते हैं—

वागंगाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते।
वागंगोपांगसंयुक्तस्तु अनुभावस्ततः स्मृतः।।

(नाट्यशास्त्र 7/5)

अर्थात् जो भावों के पश्चात आते हैं, वे अनुभाव हैं। वाणी, अंगसंचालनादि के अभिनय स्वरूप रस का अनुभावन कराने वाले भाव अनुभाव कहे जाते हैं।

वस्तुतः हृदय के भावों की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में मनुष्य में होने वाली शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक आदि क्रियाओं को जब काव्य में नायकादि के अन्तर्गत वर्णित किया जाता है तो उसे अनुभाव कहते हैं। सामान्यतया अनुभावों को चार भागों में विभक्त किया जाता है—

(क) कायिक

(ख) वाचिक

(ग) आहार्य

(घ) सात्त्विक

(क) कायिक अनुभाव—नायकादि का किसी एक भाव व्यापार के वशीभूत होने पर शरीर के विविध अंग-प्रत्यंगों की सहज चेष्टाओं को कायिक अनुभाव कहा जाता है।

उदाहरण—

माखे लखन कुटिल भई भौंहें। रद पट फरकत परम रिसौंहें।

लक्ष्मण के क्रोध अमर्ष से वशीभूत होते ही भौंहों का कुटिल होना, होठों का फड़कना ये कायिक या आंगिक अनुभाव हैं।

(ख) वाचिक अनुभाव—काव्य में नायकादि का किसी भाव व्यापार के वशीभूत होने पर वाणी के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होने के वाचिक अनुभाव कहते हैं।

उदाहरण—

जौ तुम्हारा अनुसासन पावों, कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौ।
काचे घट जिमि डारौं फोरी सकऊँ मेरू मूलक जिमि तोरी।।

(ग) आहार्य अनुभाव—काव्य में नायकादि का किसी भाव व्यापार के वशीभूत होकर की गयी वेश रचना आहार्य अनुभाव है।

उदाहरण—

पीतवसन परिकर कटि भाथा, चारु चाप सर सोहत हाथा।
तन अनुहरत सुचंदन खोरी, स्यामल गौर मनोहर जोरी।।

(घ) सात्त्विक अनुभाव—ये अनुभाव सत्त्व (मन) से उत्पन्न होने के कारण सात्त्विक कहे जाते हैं अर्थात् भाव के संसूचनात्मक विकार रूप अनुभाव सात्त्विक अनुभाव है। आ० भरत कहते हैं कि—

मनसः समाधौसत्वनिष्पत्तिर्भवति।

अर्थात् किसी मनोविकार से प्रभावित होकर काव्य में नायकादि समाधि जैसी स्थिति में पहुँचते हैं। उस स्थिति विशेष में मानसी प्रभाव का शरीर के अंगों पर अभिव्यक्त संवेगात्मक प्रभाव ही सात्त्विक अनुभाव है। यह शरीर को जड़ता की स्थिति में आता है। इसकी संख्या आठ बतायी गयी है—स्तम्भ, अश्रु, स्वेद, कंप, वैवर्ण्य, रोमांच, स्वरभंग, प्रलय।

रस के भेद

1. शृङ्गार रस—शृङ्गार 'शब्द शृंग' और आर (शृंग + आर) इन दो शब्दों के योग से निर्मित है। जिसका अर्थ है कामोद्रेक की प्राप्ति या वृद्धि। आचार्य विश्वनाथ के कामदेव के उद्भेद (अंकुरित होने) को 'शृंग' कहा है और उसकी उत्पत्ति का कारण है—

शृंग हि मन्मथोभेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते।।

(साहित्यदर्पण 3/183)

आचार्य भोजराज ने शृङ्गार प्रकाश की रचना करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि इसी से सम्पूर्ण रस निकलते हैं, वे इसे रसराज कहते हैं। उनके अनुसार शृङ्गार ही एक मात्र रस है और रत्यादि सभी भाव है। यह जो कहा जाता है कि विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी के संयोग से स्थायी भाव ही रसत्व को प्राप्त होता है, सर्वथा असंगति है। विभाव एवं भावों के द्वारा आनन्द के रूप में परिणत होकर अहंकार ही रसत्व प्राप्त करता है और वही (अहंकार ही) शृंङ्गार रस है। भोज शृंङ्गार को ही चतुर्वर्ग का कारण कहा है।

नायक-नायिका के परस्पर अनुराग का वर्णन शृंगार रस के अन्तर्गत होता है। इसके दो भेद हैं—

(1) संयोग (2) वियोग (विप्रलम्भ)। ये दोनों यद्यपि परस्पर विरोधी भावों की अनुभूति कराते हैं तथापि ये पुष्ट रति को ही करते हैं।

स्थायीभाव-रति, आलम्बन-नायक-नायिका, उद्दीपन-मुख-सौन्दर्य, वसंत, चाँदनी रात आदि, आश्रय-प्रेमसक्त नायक या नायिका अनुभाव-आश्रय का प्रेमपूर्वक देखना, कंप, रोमांच, कटाक्ष, मुस्कान आदि, संचारी, जुगुप्सा, मरण, संचारी भाव को छोड़कर प्रायः शेष सभी। ***उदाहरण***—

संयोग श्रृंगार

चितवन चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गये नृप किसोर मन चीता।।
लता ओट तब सखिन्ह लखाये। श्यामल गौर किसोर सुहाये।।
थके नयन रघुपति छवि देखे। पलकन्हिहूँ परिहरी निमेषे।।
अधिक सनेह देह भई भोरी। सरद ससिहिं जनु चितव चकोरी।।
लोचन मग रामहिं उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सांयानी।।

यहाँ सीता का राम के प्रति जो प्रेमभाव है वही रति स्थायी भाव है। राम और सीता आलम्बन विभाव हैं, लतादि उद्दीपन विभाव है, देखना देह का भारी होना आदि अनुभाव है, हर्ष, उत्सुकता आदि संचारी भाव है। अतः यहाँ पूर्ण संयोग श्रृंगार रस है।

वियोग श्रृंगार

नैननि को तरसैये कहाँ लौं, कहाँ लौं हियो विरहागि में तैये।
एक घरी न कहूँ कल पैये, कहाँ लगि प्राननि को कलपैये।
आवै यही अब जी में विचार सखी चलि सौतिहू के गृह जैये।
मान घटे ते कहाँ घटि है, जु पै प्रान पियारे को देखन पैये।।

यहाँ नायक तथा नायिका का पारस्परिक अनुराग रति स्थायी भाव है। नायक तथा नायिका आलम्बन विभाव है। नैनन को तरसाना, एक धरी को कल न पाना, सौत के घर चलने का आग्रह आदि अनुभाव है। देखने की उत्सुकता तथा उद्वेग संचारी भाव है। यह वियोग विरह के कारण है। अतः पूर्ण वियोग श्रृंगार का उदाहरण है।

वियोग के दो मुख्य भेद हैं—मान और प्रवास। मान का अर्थ है रूठना। जन नायिका नायक से रूठती है तो मान होता है। इसके दो भेद होते हैं—प्रणयमान और ईर्ष्यामान।

प्रिय के परदेस जाने से उत्पन्न वियोग प्रवास कहा जाता है। यह काव्य में कई कारणों से होता है।

2. हास्य रस—विकृत, आकार, चेष्टा, वेष, वाणी आदि के वर्णन से हास्य रस की उत्पत्ति होती है। आचार्य भरत ने हास्य रस के मूल में विकृति का भाव माना है और इसे सभी रसों से अधिक सुखात्मक कहा है। आचार्य रुद्रट ने दूसरों के विकृत अंग, चेष्टा, वेष आदि से हास्यरस की उत्पत्ति बताई और उसे नीच, स्त्री और बालक से संबद्ध माना—

हास्यो हासप्रकृत्तिर्हासो विकृतांगवेषचेष्टाभ्यः।
भवति परस्थाभ्यः स च भूम्ना स्त्री नीचबलागतः।।

(काव्यालंकार 16/12)

हास्य रस के विवेचन के क्रम में आचार्य अभिनवगुप्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे सभी रसों के आभास से हास्य की सिद्धि स्वीकार करते हैं। हास्य की उत्पत्ति न केवल शृंगार से अपितु शोक से भी मानते हैं। उनके अनुसार अबंधु (शत्रु) के प्रति शोक हास्य में परिणत हो जाता है—

एवं यो यस्य न बंधुस्तच्छोके करुणोऽपि हास्य एवेति सर्वत्र योज्यम्।

(अभिनवभारती, भाग-1 पृ. 296)

स्थायी भाव—हास; आलम्बन-विकृत वेष, विकृत वचन वाला व्यक्ति।

उद्दीपन—अनुपयुक्त वचन, वेष-भूषा आदि।

अनुभाव—मुख का फैलना, आँखों का मींचना आदि।

संचारी—निद्रा, आलस्य, चपलता, अवहित्थ आदि।

उदाहरण—

विधि हरि संग हर हिम के भवन ठाढ़े,
कुंवर केलऊ कों दिगंबर सुभेष कैं।
कह बिहारी सजी पन्नग लँगोटी एक,
जानकै मृजाद राजभवन विशेष कै।
तो लौं गए गरुड़ विलोकि सो भुजंगभाज्यो,
संभु सकुचाने हँसे साथी प्रभा पेखि कै।
ब्रह्मा हँसै रारी दै दै विष्णु हँसे तारी दै दै,
नारी हँसै सारी दै दै, दूल्हा देख-देख कै।।

शिवजी को नग्न देखकर लोगों का हँसना-हास स्थायी है, शिवजी आलंबन है, गरुड़ को देखकर लंगोटी बने सर्प का खिसकना उद्दीपन विभाव है। नग्न महादेव को देखकर ब्रह्मा-विष्णु आदि का ताली बजाकर हँसना और नारियों का वस्त्र देकर हँसना अनुभाव है और हर्ष, चपलता आदि संचारी है।

भारतीय आचार्यों उत्तम, मध्यम एवं निम्न श्रेणी के पुरुष-स्त्रियों के आधार पर इसको छः भागों में विभक्त किया है—

1. उत्तम प्रकृति—(क) स्मित (ख) हसित।
2. मध्यम प्रकृति—(ग) विहसित (घ) उपहसित।
3. निम्न प्रकृति—(ङ) अपहसित (च) अतिहसित।

हास्य रस के इन भेदों का आचार्यों ने आत्मस्थ और परस्थ इन दो भेदों में विभक्त करके इसे बारह उपभेदों में रखा है।

करुण रस

भवभूति ने उत्तररामचरितम् में इसे सम्पूर्ण रसों का आधारभूत तत्त्व स्वीकार किया है। उनका प्रख्यात पद्य है—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्त बुदबुद-तरंगमयान् विकारान्
अम्भो यथा, सलिलमेव तु तत् समग्रम्।।

(तृतीय अंक)

अर्थात् मुख्यरस एक ही है और वह करुण ही है। वह निमित्त की भिन्नता से, कारणों के भेद से, भिन्न-भिन्न विकृति को प्राप्त होता है। करुण ही स्थायी भावों की भिन्नता के कारण शृगारादि रसों के रूप में अवतीर्ण होता है। इस विषय में उसकी तुलना जल से की जा सकती है। हवा के झोकों के अन्तर के कारण वही जल कभी आवर्त बन जाता है, कभी वही बुद्बुद बन जाता है और कमी वह उत्ताल तरंगों का रूप धारण करता है। वह सब जल ही जल होता है, परन्तु निमित्त के कारण विभिन्न आकारों को धारण करता है। करुण रस की भी यही स्थिति होती है।

शोक स्थायी भाव से इसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है और प्रियजन के वियोग से सम्बद्ध देहनाश, विभवनाश, शाप से उत्पन्न क्लेश, देश निर्वासन तथा अनेकानेक सम्भावित विपत्तियों का आगमन विभाव के रूप में होता है। आचार्य धनंजय ने इष्टनाश या अनिष्ट की प्राप्ति से करुण रस की उत्पत्ति मानी है—

इष्टनाशादनिष्टप्राप्तौ शोकात्मा करुणोरसः

(दशरूपक 4/81)

आचार्यों ने इसे कई रूपों में विभक्त किया है। आ० भरत इसके तीन भेद स्वीकार करते हैं—

1. धर्मोपघातक
2. अर्थापचयोदभव
3. शोककृत

अग्निपुराणकार ने चित्तग्लानिजन्य इसके एक अन्य भेद को भी स्वीकार किया है। करुण रस का स्थायी भाव-शोक, आलम्बन-विनष्ट व्यक्ति या बस्तु, उद्दीपन

उसका शव, चित्र, गुण आदि। अनुभाव—देवनिन्द, भूमिपतन, रोना, स्तम्भ, प्रलाप आदि संचारी—निर्वेद मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति भ्रम।

उदाहरण—

सोक विकल सब रोवहि रानी, रूप सीलु बल तेज बखानी।
करहिं विलाप अनेक प्रकारा, परहिं भूमि तल बारहिं बारा।।

दशरथ के मृत होने पर रानियों का शोक करुण रस की व्यंजना है।

यहाँ दशरथ-आलम्बन, आश्रय-रानियाँ, उद्दीपन राजा का रूप, शील बल, तेज वर्णन, अनुभाव, रोना और विलाप करना, संचारीभाव स्मृति, मोह आदि है। अतः यहाँ करुण रस है।

वीर रस

उत्साह स्थायी भाव से परिपुष्ट यह वीर रस अनेक रूपों में काव्य के अन्तर्गत प्रकट होता हैं पराक्रम, बल, न्याय यश आदि इसके कारण बताये गये हैं। आचार्य भानुदत्त परिपूर्णतः प्रकट होने वाले उत्साह या सम्पूर्ण इन्द्रियों के प्रहर्ष को वीर रस कहते हैं—

परिपूर्ण उत्साहः सर्वेन्द्रियाणां प्रहर्षो वा वीरः

वीर रस का आश्रय उत्तम पात्र होता है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत इसके तीन भेदों का उल्लेख किया है—

1. दानवीर
2. धर्मवीर
3. युद्धवीर

इनके स्थायीभाव दानोत्साह, धर्मोत्साह और युद्धोत्साह है।

आलम्बन—शत्रु जिस पर अधिकार प्राप्त करना है।

उद्दीपन—शत्रु का प्रताप, विस्मय, शौर्य, कोलाहल आदि

अनुभाव—हथियारों का चलाना, नेत्रों का लाल होना, शरीर के रोमों का खड़ा होना आदि।

संचारी—मति, गर्व, धृति, प्रहर्ष आदि।

उदाहरण—

मैं सत्य कहता हूँ सखे! सुकुमार मत जानो मुझे।
यमराज से भी युद्ध में प्रस्तुत सदा जानो मुझे।।
हे सारथे! हैं द्रोण क्या? आवें स्वयं देवेन्द्र भी।
वे भी न जीतेंगे समर में आज क्या मुझसे कभी।।

यहाँ आश्रय—अभिमन्यु, अलंबन द्रोण आदि कौरव पक्ष,
अनुभाव—अभिमन्यु के वचन संचारी भाव-गर्व, हर्ष, उत्सुकता।

भयानक रस

भयानक रस की उत्पत्ति भयावह दृश्य को देखने या बलवान व्यक्तियों के अपराध करने से होती है। भय स्थायी भाव से पुष्ट रस को भयानक रस कहते हैं। पताका पतन, कीर्ति दोष, भयोत्पादक शब्द, युद्धभूमि, निर्जन स्थान शत्रु आदि से घिर जाना इसके कारण है। हाथ-पैर में कंपन, शरीर में रोमांच, विवर्णता, स्वर परिवर्तन आदि अनुभाव है। स्तम्भ, वैवर्ण्य, स्वेद, रोमाञ्च, कंप, त्रास, चपलता आदि संचारी भाव है।

(1) व्याधिजन्य (कृत्रिम) (2) अपराधजन्य (3) वित्रासितक (अनिष्ट की आशंका से उत्पन्न)।

उदाहरण—

समस्त सर्पों संग श्याम ज्यों कढ़े,
कलिंद की नन्दिनि के सु अंक से।
खड़े किनारे जितने मनुष्य थे,
सभी महा शंकित भीत हो उठे।

यहाँ ब्रजवासी—आश्रय, सर्पों से घिरे कृष्ण का दृश्य, अनुभाव—भागना, काँपना, भयभीत होना, संचारी भाव—शंका, आवेग मोह।

वीभत्स रस

घृणित या घृणोत्पादक पदार्थों के दर्शन या श्रवण से वीभत्स रस उत्पन्न होता है। वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा होता है। विभाव के रूप में रक्त, आदि का निकलना, अनुभाव के रूप में आँख, नाक, कान को बंद करना, जी मचलाना, मुँह विचकाना आदि आते हैं। व्यभिचारी भाव के अन्तर्गत व्याधि, मोह, आवेग, अपस्मर, मरण आदि आते हैं। आचार्यों ने इसके दो भेदों का उल्लेख किया है—(1) क्षोभज (शुद्ध) उद्वेगी (अशुद्ध) रुधिरदि से जिसकी उत्पत्ति हो उसे क्षोभज और विष्ठा आदि से उत्पन्न वीभत्स को उद्वेगी कहा जाता है।

उदाहरण—

रक्त मांस के सड़े पंक से उमड़ रही है,
महाघोर दुर्गन्ध, रूद्ध हो उठती श्वासा।

तैर रहे गल अस्थि-खण्डशत रुण्ड मुण्डहत
कुत्सित कृमि संकुल कर्दम में महानाश के।।

आश्रम-मजदूर, आलम्बन-युद्धभूमि, उद्दीपन-सड़ाव दुर्गन्ध अनुभाव-श्वास का रुद्ध होना आदि।

अद्‌भुत रस

आश्चर्यजनक पदार्थों के दर्शन से अद्‌भुत रस उत्पन्न होता है। इसकी उत्पत्ति लोकोत्तर वस्तु या घटना के कारण भी होती है। आचार्य भरत ने बताया है कि अद्‌भुत रस की उत्पत्ति दिव्यजनों के दर्शन, अभीष्ट मनोरथ की प्राप्ति, उपवन एवं देवमंदिर में जाने, सभा, विमान, माया, इन्द्रजाल की संभावना आदि कारणों से होती है। आचार्य भानुदत्त ने लोकोत्तर घटना तथा विस्मय जनक पदार्थों के अतिरिक्त अत्युक्ति, भ्रमोक्ति, चित्रोक्ति तथा विरोधाभास आदि को अद्‌भुत रस का कारण माना है—

अत्युक्तिभ्रमोक्ति चित्रोक्ति विरोधाभास प्रभृतयो अद्‌भुता एव।

आचार्य भरत ने इसको दो भागों में विभक्त किया है—

1. दिव्य (दैवी चमत्कारों से युक्त)
2. आनन्दज (अप्रत्याशित घटनाओं से उत्पन्न)

स्थायीभाव—विस्मय या आश्चर्य

आलम्बन—लौकिक दृश्य या वस्तु

उद्दीपन—आलम्बन की विस्मयकारी क्रियाएँ आदि

अनुभाव—नेत्र विस्फरित होना, रोमांच, गद्‌गद स्तम्भित होना आदि।

संचारीभाव—चांचल्य, हर्ष औत्सुक्य, शंका, वितर्क, स्वेद, आवेग।

उदाहरण—

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा।
मतिभ्रम मोर कि आन विसेखा।।
तन पुलकित मुख वचन न आवा।
नयन मूँदि चरनन सिर नावा।।

स्थायी भाव विस्मय, आलंबन शिशु राम उद्दीपन—यहाँ वहाँ राम के कई रूप, अनुभाव—रोमांच और स्वरभंग संचारीभाव—वितर्क।

रौद्र रस

उद्धत प्रकृति से सम्बद्ध क्रोध नामक स्थायीभाव से सम्पुष्ट यह प्रहार, असत्य, द्रोह अपनीत भाव को व्यक्त करता है। इसके अन्तर्गत ताड़न, पीड़न, छेदन, प्रहरण,

शस्त्र संपात अदि विशेष रूपसे घटित दिखायी पड़ते हैं। दाँत का कटकटाना, नेत्रों का अरुण वर्ण होना, भौंहों का वक्र होना, कपोलों को फड़कना आदि अनुभाव आते हैं। संचारी भाव के अन्तर्गत आवेग, जड़ता, अपस्मार, गर्व आदि है। आचार्यों ने इसको वाक्य, वेश और अंग इन तीनों के आधार पर इसे तीन भागों में विभक्त किया गया है—

1. वचनात्मक रौद्र रस
2. वेषात्मक रौद्र रस
3. आंशिक या क्रियात्मक रौद्र रस

उदाहरण—

माखे लखन कुटिल भयी भौहैं।
रद-पट फरकत नैन रिसौहैं।
कहि न सकत रघुबीर डर लगे वचन जनु वान।
नाई राम-पद-कमल-जुग, बोले गिरा प्रमान।।

स्थायी भाव-क्रोध, आश्रय-लक्ष्मण, आलंबन-जनक के वचन, उद्दीपन-जनक के वचनों की कठोरता, अनुभाव-भौहैं टेढ़ी हेना, ओठ फड़कना, नेत्रों का रिसौहे होना, संचारी भाव-अमर्ष उग्रता।

शांत रस

तत्त्व-ज्ञान तथा वैराग्य के कारण शांत रस उत्पन्न होता है। इसकी तीन स्थिति साहित्यशास्त्र में मिलती है। प्रारम्भिक शास्त्रकार शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद या निवृत्ति मानते हैं। आचार्य अभिनवगुप्त इसका स्थायीभाव तृष्णाक्षय सुख स्वीकार करते हैं। भक्त आचार्यों ने शांत भक्ति रस की कल्पना की है और इसका स्थायी भाव शांत भक्ति रति मानते हैं। वस्तुतः धार्मिक मान्यताओं से सम्बन्ध होने के कारण इस शांत के विविध रूप विविध धार्मिक मतों एवं उनसे सम्बद्ध साहित्य में मिलता है।

शांत रस तत्त्वज्ञान, वैराग्य चित्तशुद्धि आदि विभावों द्वारा होता है। यम, नियम, आध्यात्मध्यान, धारणा, उपासना, समस्त प्राणियों पर दया, सन्यास आदि अनुभवों द्वारा इसको ग्रहण किया जाता है। निर्वेद, धृति, स्मृति, स्तम्भ, रोमांच, हर्ष आदि इसके संचारी भाव हैं।

आचार्य अभिनवगुप्त ने शान्त रस को आदि रस माना है जो समस्त रसों का आधार है। इसी से सम्पूर्ण रस निष्पात्र होते हैं तथा इसी में विलीन हो जाते हैं—

भावा विकारा रत्याद्याः शान्तस्तु प्रकृतिर्मतः।
विकारः प्रकृतेर्जातः पुनस्तत्रैव लीयते।

स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद् भावः प्रवर्तते।
पुनर्निभिन्तापाये च शान्त एवोपलीयते।।

शांत मूल प्रकृति है, रत्यादि उस मूल प्रकृति (शांत) के विकार है। विकार (रति आदि) उसी मूल प्रकृति से उत्पन्न हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं। अपने-अपने निमित्तों (स्थायी भावों) की पूर्ति के लिए ये शांत से ही सम्पन्न होते हैं और अपने निमित्तों की परिपूर्णता के बाद उसी शांत में विलीन हो जाते हैं।

उदाहरण—

भागीरथ जलपानं करौ, अरु नाम द्वै राम को लेत सदा हौं।
मोको न लेनो न देनों कछू, कलि! भूति न रावरी ओर चितैहौं।
जानि कै जोर करौ परनाम, तुम्हें पछतैहों पै मैं न मितैहौं।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यौ उरगारि, हौ त्यों ही तिहारे हिये न मितै हौं।।

यहाँ पर शम या निर्वेद स्थायी भाव के आश्रय हैं—तुलसीदास, आलम्बन है—राम का नाम, उद्दीपन-कलिकाल की करालता, कपटादि उद्दीपन है। परमसंतोष की अवस्था अनुभाव है। मति, धृति, स्मृति आदि संचारी है।

वात्सल्य रस

अनेक आचार्यों ने वात्सल्य को स्वतन्त्र रस की कोटि में न रखकर शृंगार-रस के अन्तर्गत रखा है किन्तु अनेक आचार्यों ने वात्सल्य को पृथक रस माना है। आचार्य रुद्रट ने बहुत पहले ही प्रेयान् रस की कल्पना के साथ वात्सल्यरस की सत्ता मानी तथा स्थायी भाव स्नेह माना। आचार्य अभिनवगुप्त, हेमचन्द्र, भानुदत्त आदि आचार्यों ने वात्सल्य रस को एक स्वतन्त्र रस के रूप में स्थान दिया। आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण में कहते हैं कि,

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः

अर्थात् चमत्कार स्फुट होने के कारण वात्सल्य को रस माना जा सकता है।

भक्त आचार्यों में श्री रूप गोस्वामी ने वात्सल्य भक्ति रति स्थायी भाव से सम्पुष्ट वात्सल्य भक्ति रस को मान्यता दी है उनके अनुसार लोक जब ईश्वर की बाल-लीला से जुड़ता है तो इसकी स्थिति आ जाती है।

काव्यशास्त्रियों ने वात्सल्य के स्थायी भाव के लिए 'अभिलाष' का उल्लेख किया है। भानुदत्त ने वात्सल्य भाव को, इसका स्थायी भाव माना है। आलम्बन, शिशु, उद्दीपन-शिशु का भोला रूप, क्रीड़ा चंचलता, उछलना-कूदना आदि। आश्रय—

माता-पिता, गुरुजन आदि, अनुभाव-कपोल का चुंबन, उछालना, छाती से चिपटाना आदि, संचारी भाव-आवेश हर्ष, औत्सुक्य, गर्व आदि।

उदाहरण—

हरि अपने रंग में कछु गावत।
तनक-तनक चरनन सों नाचत, मनहिं मनहिं रिझावत।
बाँहि ऊँचाइ काजरी-धौरी गैयन टेरि बुलावत।
माखन तनक आपने कर ले तनक बदन में नावत।
कवहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ में लवनी लिये खवावत।
दुरि देखत जसुमति यह लीला हरखि अनन्द बढ़ावत।।

यहाँ स्थायीभाव स्नेह (वात्सल्य) आश्रम-यशोदा, आलंबन—बाल कृष्ण उद्दीपन—कृष्ण का गाना, नाचना, बाँह उठाकर गायों को बुलाना, मुँह में माखन डालना, प्रतिबिंब का माखन खिलाना। अनुभाव—यशोदा का छिपकर देखना, संचारी भाव—हर्ष आदि।

भक्ति रस

ईश्वर विषयक प्रेम के कारण भक्ति रस उत्पन्न होता है। इसकी दो परम्पराएँ मिलती हैं। (1) लीला सापेक्ष्य भक्तिरस जिसका व्यवस्थित विवेचन रूप गोस्वामी ने किया है। उन्होंने भक्ति रसामृत सिन्धु तथा उज्ज्वल नीलमणि नामक ग्रन्थों का प्रणयन कर इसे शास्त्रीय रूप प्रदान किया। वे अन्य सभी रसों को भक्तिरस में ही अंतर्निविष्ट कर देते हैं। (2) लीला निरपेक्ष भक्ति रस, जिसकी व्याख्या का श्रेय मधुसूदन सरस्वती को है।

रूपगोस्वामी ने भक्ति रस को उज्ज्वल या मधुररस की अभिधा प्रदान करते हुए भक्ति रस को इस प्रकार परिभषित किया है—भक्ति विषयक विभाव, अनुभाव, सात्त्विक एवं व्यभिचारी भाव से परिपुष्ट सामग्री भक्ति रस रुपता को प्राप्त होती है। इसका स्थायी भाव कृष्ण रति है। श्रवणादि नवधा साधन कृष्ण का वेश विन्यास, रूप माधुरी आदि अनुभाव के रूप में है। तैंतीस संचारी मिलकर इस भक्ति रस को सान्द्र तथा उत्कृष्ट बनाते हैं। इन्होंने अधिकार भेद से इसे पाँच प्रकार का माना है—

शांत भक्ति रस, दास्य भक्ति रस, साख्य भक्ति रस, वात्सल्य भक्ति रस तथा मधुर भक्ति रस।

उदाहरण—

व्याध हूँ ते बेहद असाधु हौं अजामिल लौं,
ग्राहते गुनाही, कैसे तिनमों गिनाओगे।

स्यौरी हौं न शूद्र नहीं केवट कहूँ को त्यौं,
न गौतमी तिया जापै पगधरि जावोगे।
राम सों कहत पद्‌माकर पुकारि पुनि,
मेरे महापापन को पार हू न पाओगे।
झूठे ही कलंक सुनि सीता जैसी सती तजी नाथ
हौं तो साचौं ही कलंकी ताहि कैसे अपनावोगे।।

भगवान के प्रति प्रेम स्थायी भाव, भगवान राम इसके आलंबन, उद्दीपन-साधु की संगति, पवित्र तीर्थ स्थल अनुभाव-भगवान से विनती, अपराधों की स्वीकृति तथा क्षमा के लिए प्रार्थना तथा मति, चिन्ता, वितर्क संचारी भाव है।

रस की अन्य दशाएँ

रस विरोध—रस विरोध के अन्तर्गत रसों के परस्पर विरोध का वर्णन किया जाता है। आचार्य विश्वनाथ रस के पारस्परिक विरोधाविरोध के तीन आधारों की कल्पना की है—कुछ रस तो ऐसे होते हैं जो एक आलंबन के विरुद्ध होते हैं, कुछ आश्रय के विरुद्ध होते हैं तथा कुछ एक-दूसरे के बाद आगे-पीछे बिना व्यवधान के आने के विरुद्ध होते हैं। ये इस प्रकार हैं—

श्रृंगार	—	करुण, वीभत्स, रौद्र, भयानक, शान्त
हास्य	—	करुण, भयानक
वीर	—	शांत तथा भयानक
भयानक	—	श्रृंगार, वीर, रौद्र, शांत, हास्य
रौद्र	—	श्रृंगार, हास्य, भयानक, अद्‌भुत
वीभत्स	—	श्रृंगार
अद्‌भुत	—	रौद्र
करुण	—	हास्य, श्रृंगार
शांत	—	श्रृंगार, हास्य, वीर, रौद्र, भयानक

रसमैत्री—रस मैत्री भी रस विरोध की तरह ही होता है। अनुकूल भाव तथा रस एक-दूसरे को गति देते हैं तथा उत्कर्षकारक होते हैं।

वीर रस, अद्‌भुत रस एवं रौद्र रस परस्पर मित्र हैं, श्रृंगार, अद्‌भुत एवं हास्य रसों की परस्पर मैत्री है। वीभत्स तथा भयानक रस में भी मैत्री है।

रसाभास—इसके अन्तर्गत रसों के अनौचित्यपूर्ण प्रयोग पर विचार किया जाता है। रसाभास से अभिप्राय रसों के अनुचित वर्णन से है। ध्वनिकार ने अनौचित्य

को रसभंग का मूल आधार माना है। उनके अनुसार रसाभास में सीपी में रजत की भाँति रस का वास्तविक बोध न होकर उसके बिम्ब (छाया) की प्रतीति होती है। अर्थात् अनुचित रूप से प्रवृत्त स्थायी भाव के आस्वाद को रसाभास कहते हैं। पंडित राज जगन्नाथ के अनुसार रस का अनुचित आलंबन विभाव रसाभास है—

अनुचितविभावालंबनत्वं रसाभासत्वम्।

शृंगार रसाभास—उपनायक या अन्य पुरुष में नायिका का अनुराग, निरिन्द्रियों (नदी आदि) के प्रेम का वर्णन, माता, गुरु पत्नी, का संयोग वर्णन शृंगार रसाभास है।

करुणरसाभास—विरक्त या सन्यासी में शोक होना
रौद्ररसाभास—पूज्य व्यक्तियों में क्रोध का होना
वीररसाभास—नीच व्यक्तियों में उत्साह का वर्णन
भयानकरसाभास—उत्तम व्यक्तियों में भय
वीभत्सरसाभास—यज्ञ के बलिपशु में ग्लानि होना
अद्भुतरसाभास—जादूगर के कार्यों में आश्चर्य
शांतरसाभास—नीच व्यक्तियों में निर्वेद या शम का वर्णन

उदाहरण—

केसव केसन अस करी जस अरिहूँ न कराहिं।
चन्द्रवदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं।।

यहाँ वृद्ध केशव में परनायिका के प्रति अनुराग शृंगार रसाभास है।

भावाभास—भाव का अनौचित्यपूण वर्णन भावाभास है। आचार्य विश्वनाथ वेश्या आदि के लज्जाप्रदर्शन को भावाभास कहा है—भावाभासो लज्जादिके तु वेश्यादिविषयेस्यात्।

उदाहरण—हुमुकिलात तकि कूबर मारा, परिमुँह भरिमहिं करत चिकारा। आलम्बन मंथरा के विकलांग होने से क्रोध के साथ हास्य की भी उत्पत्ति होती है जो भावाभास है।

भावोदय—जहाँ अनेक भावों के बीच किसी विशिष्ट भाव की प्रवलता व्यंजित हो उसे भावोदय कहा जाता है—

उझकि उझकि पद कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि सबै लगी।
हमको लिख्यो है कहा, हमको लिख्यो है कहा
हमको लिख्यो है कहा कहनि सबै लगी।।

भावशांति—जब एक भाव की व्यंजना हो रही हो, उसी समय किसी दूसरे विरोधी भाव की व्यंजना हो जाने पर पूर्व भाव की शांति में जो चमत्कार होता है। उसे भावशान्ति कहते हैं।

उदाहरण—

प्रभु विलाप सुनि कान विकल भये वानर निकर।
आई गयउ हनुमान जिमि करुणा महँ वीर रस।।

राम के विलाप से उत्पन्न करुण रस की हनुमान के आगमन से उत्पन्न उत्साह (वीर रस) के करुण कारण रस खत्म हो रहा है अतः यहाँ भावशांति है।

भावसन्धि—जहाँ एक साथ दो भावों की सन्धि का चित्रण किया जाये तो भाव सन्धि होती है।

उदाहरण—

छूटै न लाज न लालचौ, प्यौं लखि नैहर गेह।
सटपटात लोचन खरे, भरे संकोच सनेह।।

नायिका के मयके में प्रिय मिलन की आकांक्षा में स्नेह, तथा गुरुजनों के कारण न मिलने में लज्जा भाव की संधि है। स्नेह तथा लज्जा दोनों के वर्णन में समान चमत्कार है।

भावशबलता—जब एक भाव के साथ अन्य अनेक भावों की एकत्र स्थिति हो तो भावशबलता होती है। अर्थात् इसमें एक साथ कई भाव दिखाई पड़ते हैं।

ऋषिहिं देखि हरषै हियो राम देखि कुम्हिलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाय।।

यहाँ हर्ष, विषाद, भय एवं चिंता भाव एक साथ उपस्थित हैं अतः भाव शबलता है।

□□□

अलंकार

परिभाषा—अलंकार शब्द अलम् और कार इन दो शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ है शोभाकारक पदार्थ। अलंकरोति इति अलंकारः अर्थात् शोभावर्धक तत्त्व को अलंकार कहते हैं। अलंकार शब्द की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है जिसका प्रारम्भ में उपयोग व्याकरण एवं न्यायशास्त्र में होता था। आचार्य भरत ने सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र में अलंकार को परिभाषित तो नहीं किया लेकिन चार अलंकारों उपमा, रूपक, यमक, दीपक का उल्लेख किया। अलंकार के सम्बन्ध में प्रथम काव्यशास्त्रीय परिभाषा आचार्य दण्डी की है—

काव्यशोभाकरान धर्मान् अलंकारन् प्रचक्षते।

(काव्यादर्श, 2/1)

अर्थात् काव्य के शोभाकारक धर्म का नाम अलंकार है।

आचार्य वामन के अनुसार काव्य के सम्पूर्ण सौन्दर्य का नाम अलंकार है—

सौन्दर्यमलंकारः

आचार्य दण्डी और आचार्य वामन की परम्परा के ठीक विपरीत आचार्य भामह अलंकार को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि,

वाचां वक्रार्थ शब्दोक्तिः अलंकाराय कल्पते

अर्थात् वाणी का वह काव्यमय व्यापार जो अर्थ की वक्रता से संयुक्त हो अलंकार है।

पंडितराज जगन्नाथ ने अलंकार को काव्य की आत्मा व्यंग्य का रमणीयता प्रयोजक धर्म मानते हुए आनन्दवर्धन प्रभृति आचार्यों के विचार की ही पुष्टि की—

काव्यात्मनो व्यंग्यस्य रमणीयताप्रयोजका अलंकाराः

अलंकार वर्गीकरण—अलंकार को सर्वप्रथम आचार्य वामन ने वर्गीकृत करने का प्रयास किया और उसे दो वर्गों में बाँटा—

1. शब्दालंकार - वाचकद्वारक
2. अर्थालंकार - वाच्यद्वारक

इस सिद्धान्त को भोज, अग्निपुराणकार, पंडितराज जगन्नाथ स्वीकार करते हैं। अग्निपुराणकार और भोज ने इस विभाजन में उभयालंकार भी जोड़कर इसके तीन भेद स्वीकार किया है।

अनेक अलंकारिक इस वर्गीकरण को स्वीकार नहीं करते। राजानक, उद्‌भट, रुय्यक, भट्टोदभट्ट,.मम्मट, विश्वनाथ आदि का मानना है कि अलंकार की प्रकृति के आधार पर उसका विभाजन करना चाहिए। इस क्रम में आचार्य राजानक रुय्यक का वर्गीकरण अधिक प्रामाणिक माना जाता है। उनके अनुसार सम्पूर्ण अलंकारों को निम्नलिखित क्रमों में विभक्त करके वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. सादृश्यगर्भ—इसको तीन भागों में विभक्त किया है—
   (क) भेदप्रधान—इसके अन्तर्गत 16 अलंकार हैं।
   (ख) अभेदप्रधान—इसमें 8 अलंकार समाहित हैं।
   (ग) भेदाभेदतुल्य—इसके अन्तर्गत 4 अलंकार हैं।
2. विरोधगर्भ—विरोध आदि इसमें 12 अलंकार सम्मिलित किये गए हैं।
3. श्रृंखलाबद्ध—इसमें कारणमाला, एकावली, मालादीपक सार ये चार अलंकार हैं।
4. न्यायमूलक—इसके तीन भेद—तर्कन्याय, काव्यन्याय, लोकन्याय। इसमें कुल 16 अलंकार हैं।
5. गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक—इसमें सूक्ष्म, शंकर, सृष्टि ये तीन अलंकार रखे गए हैं।

प्रमुख अलंकारों का परिचय

शब्दालंकार

अनुप्रास—आचार्य भामह अनुप्रास को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

सवर्णरूपविन्यासमनुप्रासं प्रचक्षते

(काव्यालंकार 2/6)

अर्थात् सरूप वर्णों के विन्यास को अनुप्रास कहते हैं।

सामान्यतया अनुप्रास के 5 भेद किये जाते हैं—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, अन्त्यानुप्रास तथा लाटानुप्रास।

(क) छेकानुप्रास—छेक का अर्थ है वाक् चातुर्य। अर्थात् वाक् चातुर्य से परिपूर्ण एक या एकाधिक वर्ण्रों की आवृत्ति को छेकानुप्रास कहा जाता है।

उदाहरण—अमिय भूरिमय चूरन चारू। समन सकल भवरुज परिवारू।

यहाँ, म म, र, र, स, स, रू, रू की आवृत्ति सचेष्ट भाव होने के कारण छेकानुप्रास है।

(ख) वृत्यानुप्रास—काव्य के अन्तर्गत पाँच वृत्तियाँ बताई गयी हैं— मधुरा, ललिता, प्रौढ़ा, परुषा, भद्रा। कतिपय आचार्य उपनागरिका परुषा तथा कोमला इस तीन वृत्तियों को मान्यता देते हैं। इन वृत्तियों के अनुकूल वर्णसाम्य ही वृत्यनुप्रास है।

उदाहरण—कंकन किंकिनि नूपूर धुनि सूनि, कहत लखन सन राम हृदय गुनि यहाँ न वर्ण की पाँच जन आवृत्ति द्वारा कोमल या मधुर वृत्ति का पोषण करने के कारण यहाँ वृत्यनुप्रास है।

(ग) श्रुत्यनुप्रास—मुख के उच्चारण स्थान से सम्बन्धित विशिष्ट वर्णों के साम्य को श्रुत्यनुप्रास कहते हैं।

उदाहरण—पाप पहार प्रगट कई सोई, भरी क्रोध जल जाइ न जोई।

यहाँ वर्ण अर्थात् ओष्ठ एवं ज वर्ण अर्थात् तालव्य वर्णों की आवृत्ति के कारण श्रुत्यनुप्रास है।

अन्त्यानुप्रास—जहाँ पद के अन्त के एक ही वर्ण और एक ही स्वर की साम्यमूलक आवृत्ति हो, उसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं।

उदाहरण—

बंदऊँ गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर।।

ज, ज तथा र, र के साम्य से अन्त्यानुप्रास है।

लाटानुप्रास—तात्पर्य भेद से शब्द तथा अर्थ की आवृत्ति की लाटानुप्रास है।

उदाहरण—

मधुखंडन परिनाम है सियंरानी को पीय।
मधुखंडन परिनाम है सियरानी को पीय।।

मधुदैत्य का वध (खंडन) ही जिसका परिणाम है ऐसे सीतापति राम का नाम मधु (मिठाई) के टुकड़े (खंडन) से बढ़कर है।

2. यमक

आचार्य वामन यमक के परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—

पदमनेकार्थमक्षरं वा वृत्तं स्थाननियमे यमकम्।

अर्थात् स्थान नियम (पद का आदि, मध्य, अन्त) के रहने पर अनेकार्थक पद अथवा अक्षर की आवृत्ति को यमक कहते हैं।

आचार्य केशवदासने यमक को अत्यन्त सरल ढंग से परिभाषित करते हुए कहा कि—

पद एकै नाना अरथ जिनसे जेतो बित्त।
तामे ताको काढ़िये यमक माहि दै चित्त।।

अर्थात् पद एक से हों लेकिन उनके अर्थ भिन्न-भिन्न हों।

उदाहरण—

कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात जग या पाये बौराय।।

यहाँ पर 'कनक' शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है और दोनों बार उसका अर्थ भिन्न है। पहले 'कनक' का अर्थ धतूरा तथा दूसरे 'कनक' का अर्थ 'स्वर्ण' है। अतः यहाँ पर यमक अलंकार है।

यमक अलंकार का आचार्यों ने मुख्यतः तीन भेद किया है—

1. आदिपद यमक
2. मध्यपद यमक
3. अन्त पद यमक

3. श्लेष

आचार्य विश्वनाथ श्लेष को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि,

शिलष्टैः पदैरनेकार्थाभिधानेश्लेष दृष्यते।

(साहित्यदर्पण 10/11)

अर्थात् जहाँ पर शिलष्ट शब्दों के द्वारा अनेक अर्थ का अभिधान या कथन किया जाय वहाँ श्लेष होता है।

आचार्य केशवदास श्लेष को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—

दोय तीनि अरु भाँति बहु आवत जामें अर्थ।
श्लेष नाम तासों कहत जिनकी बुद्धि समर्थ।।

(कविप्रिया 11/29)

अर्थात् जहाँ एक शब्द के दो, तीनया अधिक अर्थ स्फुटित हो वहाँ श्लेष अलंकार होता है। श्लेष के दो भेद अधिक प्रचलित हैं—

1. अभंगपद श्लेष
2. सभंगपद श्लेष

उदाहरण—

रहिमन पानी राखियै बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानस चून।।

यहाँ पानी के तीन अर्थ हैं—कांति, आत्मसम्मान और जल।

अतः यहाँ पर श्लेष अलंकार है।

4. वक्रोक्ति

आचार्य वामन वक्रोक्ति को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

सादृश्य लक्षणा वक्रोक्तिः

अर्थात् लक्षणा को सादृश्य से सिद्ध करने पर वक्रोक्ति की स्थिति आती है। आचार्य केशवदास ने वक्रोक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा—

केसौ सूधी बात में बरनत टेढ़ो भाव।
वक्रोकति तासों कहै सही सबै कविराय।।

अर्थात् शब्द सीधे-सादे हों पर तात्पर्य में गूढ़ व्यंग्य हो, वह वक्रोक्ति है। इस प्रकार जहाँ कंठगत (काकु) या श्लेषादि की विशेषताओं के आधार पर सामान्य वाक्य में विशिष्ट अर्थ को व्यंजित कराया जाय, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार स्वीकार किया जाता है। श्लेष एवं काकु के आधार पर इसके दो भेद किये गए हैं—

1. श्लेष वक्रोक्ति
2. काकु वक्रोक्ति।

उदाहरण—बाउ कृपा मूरति अनुकूला, बोलत वचन झरत जनु फूला।

यहाँ कंठगत विशेषता (काकु) से फूल झड़ने का अर्थ 'कंटक चुभने' का होगा।

5. वीप्सा

भोजकृत सरस्वतीकंठाभरण में द्विरुक्ति अनुप्रास के उपभेद के रूप में वीप्सा का उल्लेख किया है। इसका सर्वप्रथम विवेचन रीतिकालीन आचार्य भिखारीदास ने किया है। उनके अनुसार जब अत्यन्त आदर के साथ एक शब्द की अनेक बार आवृत्ति हो तो वहाँ वीप्सा अलंकार होगा—

एक शब्द बहु बार जहँ, अति आदर सों होइ।
ताहि वीपसा कहत हैं कवि कोविद सब कोइ।।

(काव्य निर्णय 19/52)

उदाहरण—हा! हा!! इन्हें रोकन को टोक न लगावौ तुम।

यहाँ हा! की पुररुक्ति द्वारा गोपियों का विरह जनित आवेग व्यक्त होने से वीप्सा अलंकार है।

(ख) अर्थालंकार

1. उपमा

उपमेय उपमान के बीच स्थापित साधर्म्य के कारण इस अलंकार का जन्म होता है। संस्कृत साहित्य में उपमा को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। आचार्य राजशेखर ने उपमा को सम्पूर्ण अलंकारों की जननी कहा है। आचार्य अप्पय दीक्षित उपमा को अलंकारों का शिरोरत्न माना है। उपमा के समर्थक आचार्यों का मानना है कि उपमा के अभाव में अन्य अलंकारों का महत्त्व शून्य है। उपमा अलंकार को आचार्यों ने अनेक प्रकार से परिभाषित क़िया है आचार्य विश्वनाथ के अनुसार एक वाक्य में उपमान एवं उपमेय के वैधर्म्यरहित वाच्यसाम्य को उपमा कहते हैं—

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमाद्वयोः।

(साहित्य दर्पण 10/14)

आचार्य भामह कहते हैं कि—

विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभिः।
उपमेयस्य यत्साम्यं गुणलेशेन सोपमा।।

(काव्यालंकार 2/30)

अर्थात् विरुद्ध अथवा भिन्न उपमान के साथ देश, काल, तथा क्रियादि के द्वारा उपमेय का साम्य आदि, गुणलेश से हो तो उपमा अलंकार है।

उपमा अलंकार में सामान्यता चार तत्त्व होते हैं—

1. **उपमेय**—जिसको उपमित किया जाए वह उपमेय है।
2. **उपमान**—जिससे उपमित किया जाए वह उपमान है।
3. **साधारणधर्म**—वह गुण या क्रिया जो उपमेय एवं उपमान दोनों में हो और जिसके कारण दोनों में समता बतायी जाय।
4. **वाचक शब्द**—वह शब्द जिसके द्वारा उपमेय एवं उपमान में समानता बतायी जाय जैसे—इव, सा, सी, से आदि।

आचार्यों ने उपमा के तीन भेद किये हैं—

(क) पूर्णोपमा—जब उपमा में उपमेय, उपमान, वाचक शब्द और साधारणधर्म इन चारों कथन किया जाय तब पूर्णोपमा होती है।

उदाहरण—

पीपर पात सरिस मन डोला।

यहाँ उपमा के चारों तत्त्वों का कथन है। (मन-उपमेय, पीपर-पात-उपमान, सम-वाचक डोला-साधारण धर्म) अतः यहाँ पूर्णोपमा है।

(ख) लुप्तोपमा—जहाँ उपमेय, उपमान, वाचक शब्द और साधारण धर्म में से कोई एक या तीन लुप्त हों वहाँ लुप्तोपमा होगी। लोप के कारण इसे चार भागों में विभक्त किया जाता है—

1. उपमेय लुप्तोपमा
2. उपमान लुप्तोपमा
3. धर्म लुप्तोपमा
4. वाचक लुप्ता

उदाहरण—

कुलिस-कठोर सुनत कटु बानी।
विलपत लखन सीय सब रानी।।

यहाँ उपमेय कटुबानी, उपमान-कुलिस, साधारण धर्म-कठोर लेकिन वाचक शब्द न होने के कारण यहाँ वाचक लुप्ता है।

(ग) मालोपमा—जब उपमा में एक उपमेय के लिए अनेक उपमानों की योजना हो वहाँ मालोपमा होती है।

उदाहरण—नील सरोरुह, नीलमनि, नील नीरधर स्याम

यहाँ श्याम (कृष्ण) उपमेय के लिए तीन उपमानों का कथन किया गया है अतः यहाँ मालोपमा है।

रूपक

आचार्य दण्डी रूपक को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—

उपमैव तिरोभूतभेदारूपकमुच्यते

(काव्यादर्श 2/35)

अर्थात् जब उपमान और उपमेय में भेद का तिरोधान हो तो रूपक होता है।

आचार्य मम्मट कहते हैं कि उपमान एवं उपमेय के अभेदारोप को रूपक कहते हैं—तद्रूपकमभेदोपमानोपमेययोः *(काव्य प्रकाश 10/93)*

रूपक को तीन भागों में विभक्त किया जाता है—(क) साङ्गरूपक (ख) निरङ्गरूपक (ग) परम्परित रूपक

(क) साङ्गरूपक—जब उपमेय में उपमान को साङ्गोपांग रूप से अभेद आरोपित किया जाय।

उदाहरण—

उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल-पतंग।
विकसे संत-सरोज सब, हरषे लोचन-भृंग।।

यहाँ उपमेय मंच, रघुबर (राम), संत, लोचन (आँख) के लिए उपमान उदयाचल, बाल पतंग (सूर्य), सरोज (कमल), भृंग (भ्रमर) की योजना की गयी है।

(ख) निरङ्गरूपक—जब उपमेय को उपमान बनाया जाय पर उपमान के अंगों को उपमेय के साथ न बताया जाय।

उदाहरण—

चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे।

यहाँ चरण को कमल बताया गया है पर कमल के अंगों को उसके साथ नहीं बताया गया है।

(ग) परम्परित रूपक—परम्परित में दो रूपक होते हैं और एक रूपक का कारण अथवा आधार दूसरा रूपक होता है। अर्थात् एक रूपक दूसरे से परम्परावद्ध होता है।

उदाहरण—

उदयो ब्रजनभ आइ, हरि–मुख मधुर मयंक

यहाँ पहले ब्रज को नभ फिर हरिमुख को मयंक बताया गया है। दूसरे रूपक से पहला रूपक जुड़ा हुआ है।

उत्प्रेक्षा

आचार्य राजानक रुय्यक उत्प्रेक्षा को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि अध्यवसाये व्यापारप्रधान्ये उत्प्रेक्षा

अध्यवसायमूलक अलंकारों में व्यापार प्राधान्य के कारण उत्प्रेक्षा होती है।

आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण में कहते हैं कि—

भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना

अर्थात् उपमेय में उपमान की संभावना या कल्पना ही उत्प्रेक्षा है।

जानो, मानो, जनु, मनो, ज्यों आदि इसके वाचक शब्द हैं।

उदाहरण—

सोहत ओढ़े पीत पट श्याम सलोने गात,
मनो नीलमणि शैल पर आतप पर्‌यो प्रभात।।

यहाँ पीतपट ओढ़े कृष्ण के लिए नील मणि शैल पर प्रभात की संभावना की गयी है। अतः उत्प्रेक्षा अंलकार है।

आचार्यों द्वारा उत्प्रेक्षा के तीन भेद माने गये हैं—(1) वस्तुत्प्रेक्षा (2) हेतुत्प्रेक्षा (3) फलोत्प्रेक्षा।

प्रतीप

अप्पय दीक्षित ने प्रतीप को परिभाषित करते हुए बताया है—

प्रतीपमुपमानस्योपमेत्वप्रकल्पनम्

अर्थात् उपमेय को उपमान बना देना ही प्रतीप है।

उदाहरण—

उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम।

यहाँ प्रसिद्ध उपमेय राम के शरीर की नीलिमा को उपमान बताया गया है।

इसके पाँच भेदों की कल्पना की गयी है—

1. जहाँ प्रसिद्ध उपमेय को उपमान बना दिया जाय
2. जहाँ उपमान को उपमेय बनाकर प्रसिद्ध उपमेय का निरादर हो
3. प्रसिद्ध उपमेय को उपमान बनाकर उपमान का निरादर हो
4. उपमान को उपमेय की उपमा के अयोग्य बनाया जाय
5. जहाँ उपमान को व्यर्थ बताया जाय।

दीपक

जब प्रस्तुत (उपमेय) एवं अप्रस्तुत (उपमान) का एक धर्म कथन किया जाय तो दीपक अलंकार होता है आचार्य भरत दीपक को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—

नानाधिकरणार्थानां शब्दानां संप्रकीर्तितम्।
एक वाक्येन संयोगान्तदीपकमिहोच्यते।।

(नाट्यशास्त्र 16/60)

अर्थात् नानाधिकरणों में स्थित शब्दों का एक वाक्य में संयोग होने पर दीपक अलंकार होता है।

आचार्य वामन कहते हैं कि दीपक में उपमेय तथा उपमान वाक्यों में एक क्रिया के साथ सम्बन्ध दिखाया जाता है—

उपमानोपमेयवाक्येष्वेकाक्रियादीपकम्

(काव्यलंकार सूत्र 4/3)

उदाहरण—काहू के केहू घटाये घटै नहिं सागर और सुन-आगर प्रानी।।

यहाँ प्रस्तुत गुणवान व्यक्ति और अप्रस्तुत सागर को 'कभी किसी के घटाये नहीं घटते' इस एक ही धर्म से अन्वित किया गया है।

व्यतिरेक

आचार्य विश्वनाथ व्यतिरेक को परिभाषित करते हुए कहते हैं।

आधिक्यमुपमेयस्योपामानान्यूनताथवा व्यतिरेकः

अर्थात् उपमेय की उपमान से अधिकंता का अथवा उपमान की न्यूनता का वर्णन ही व्यतिरेक है।

आचार्य मम्मट के अनुसार,

उपमानाद्यन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः

अर्थात् उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष वर्णन ही व्यतिरेक है।

उदाहरण—

संत हृदय नवनीत समाना, कहा कविन्ह परि कहै न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता, परदुख द्रवहि सुसंत पुनीता।।

यहाँ उपमेय संत हृदय के लिए वर्णित उपमान नवनीत को उपमेय से न्यून कथित किया गया है। अतः व्यतिरेक है।

भ्रान्तिमान या भ्रम

आचार्य राजानक रुय्यक ने भ्रांतिमान को इस प्रकार परिभाषित किया है—

सादृश्यत् वस्त्वन्तर प्रतीतिः भ्रान्तिमानः।

(अलंकारसर्वस्य 55)

अर्थात् नितान्त सादृश्य के कारण भिन्न वस्तु की प्रतीति ही भ्रांतिमान है। भूषण भ्रांतिमान को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि—

आन बात को अनुमए होत जहाँ भ्रमु आन।
तासों भ्रम भूषन कहत भूषन कवि मतिमान।।

(शिवराजभूषन पृ. 71)

उदाहरण—

पायं महावर देन को नाइन बैठी आय।
फिरि-फिरि जानि महावरी ऐडी मीड़त जाय।।

यहाँ नाइन को नायिका की एड़ी की स्वाभाविक लालिमा में महावर की काल्पनिक प्रतीति के कारण भ्रम है।

सन्देह

आचार्य वामन संदेह को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

उपमानोपमेयसंशयः संदेहः

अर्थात् उपमेय में उपमान का संशय संदेह है।

साहित्यदर्पण में संदेह को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

संदेहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः

अर्थात् प्रकृत के विषय में अन्य वस्तु का प्रतिभोत्थितः संशय संदेह है।

आचार्यों ने संदेह के तीन भेद किये हैं—

1. शुद्ध संदेह—जब अंत तक संशय बना रहे।
2. निश्चयमध्य—जब आदि और मध्य में संदेह रहे किन्तु मध्य में निश्चय की स्थिति बनी रहे।
3. निश्चयांत—जब प्रारम्भ में संशय रहे किन्तु अंत में निश्चय हो जाय।

उदाहरण—

तारे आसमान के हैं आये मेहमान बनि।
केशों में निशा ने मुक्तावली सजायी है?
बिखर गयो है चूर-चूर ह्वै कै चन्द्र कैधों,
कैधों घर-घर दीप-मालिका सुहायी है?

यहाँ दीपमालिका में तारावली, मुक्तावली और चन्द्रमा के चूर्णीभूत कणों का संदेह होता है।

स्मरण

जब पूर्व में देखे सुने पदार्थ के सादृश अन्य पदार्थ को देखकर उसकी स्मृति का होना स्मरण अलंकार है। आचार्य मम्मट काव्यप्रकाश में कहते हैं—

सादृशानुभावात् स्मरणे स्मृतिः

रीतिकालीन आचार्य कुलपति स्मरण को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

जहाँ देखत उपमान कौं सुधि आवे उपमेय।
ताहीं सों सुमिरन कहत, जे कवि जानत भेय।।

(रसरहस्य 8/58)

उदाहरण—

थूहर पलास देखि-देखि के बबूर बुरे,
हाय-हाय मेरे वे तमाल सुधि आवै हैं।

उल्लेख

एक पदार्थ को जब अनेक प्रकार से वर्णन किया जाय तो उल्लेख अलंकार होना है। यह उल्लेख दो रूपों में होता है—

1. एक ही व्यक्ति द्वारा
2. अनेक व्यक्तियों द्वारा

साहित्यदर्पणकार उल्लेख को परिभाषित करते हुए कहा कि विषयवस्तु की दृष्टि से या उसे ग्रहण करने वाले व्यक्तियों यथा रुचि स्वभाव से एक उपमेय का अनेकधा उल्लेख अलंकार है—

क्वचिद्भेदाद् ग्रहीतृणां विषयाणां तथा क्वचित्।
एकस्यानेकधोल्लेखः यः स उल्लेख उच्यते।।

(साहित्यदर्पण 10/37)

मतिराम, ललितललाम में कहते हैं—

कै बहुतै कै एक जहँ, एकहिं को उल्लेख।
बहुत करत उल्लेख जहँ कहत सुकवि सविलेख।।

(पृ. 77)

उदाहरण—

जानति सौति अनीति है, जानत सखी सुनीति।
गुरुजन जानति लाज है प्रीतम जानति प्रीति।।

यहाँ सौत, सखी, गुरुजन तथा प्रिय द्वारा नायिका को विविध प्रकार से देखने के वर्णन में उल्लेख है।

उदाहरण—

जब एक बात कहकर उसके उदाहरण के रूप में एक दूसरी बात कही जाय और दोनों को जैसे, ज्यों, इव आदि उपमावाचक शब्दों से जोड़ दिया जाय उसे उदाहरण अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—

जगत जनायो जेहि सकल सो हरि जान्यों नाहिं।
ज्यौं आँखिन सब देखिए, आँख न देखी जाहि।।

यहाँ ज्यों इन एक कथन को दूसरे कथन द्वारा स्पष्ट किया गया है।

दृष्टांत

जहाँ उपमेय वाक्य उपमान वाक्य एवं उनके साधारण धर्मों में यदि बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो तो दृष्टांत अलंकार होता है। काव्यप्रकाशकार कहते हैं—

दृष्टांतः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिंबनम्।

(काव्य प्रकाश 10/102)

आचार्य भिखारीदास कहते हैं कि—

लखि विंब प्रतिविंब गति उपमेयो उपमान।
लुप्त शब्द वाचक किये हैं दृष्टांत सुजान।।

(काव्यनिर्णय 8/54)

यह साधर्म्य एवं वैधर्म्य दोनों स्थितियों में होता है अतः इसके उपयुक्त दो भेद किये गए हैं।

उदाहरण—

परी प्रेम नँदलाल के मोहि न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइकै भीखन माँगत लोग।।

प्रथम उपमेय वाक्य है और द्वितीय उपमान वाक्य तथा प्रथम वाक्य की सत्यता के निश्चय के लिए द्वितीय वाक्य की योजना की गयी है।

अर्थान्तरन्यास

अर्थान्तर का अर्थ है अन्य अर्थ का न्यास या रखना। इस अलंकार में किसी कथन का समर्थन करने के लिए अन्य अर्थ (कथन) को रखा जाता है। अर्थान्तरन्यास के मूल में सादृश्य होता है जो शब्द होता है अर्थ का व्यंग्य नहीं। अर्थात् विशेष का सामान्य के साथ तथा सामान्य का विशेष के साथ समर्थन करना अर्थान्तरन्यास अलंकार है। आचार्य दण्डी कहते हैं—

ज्ञेयः सोऽर्थांतरन्यास सुतरां प्रस्तुत्य किंचन।
तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः।।

(काव्यादर्श 2/169)

अर्थात् प्रस्तुत कथन के द्वारा अन्य या अप्रस्तुत कथन के साथ समर्थन को अर्थान्तरन्यास कहते हैं।

मतिराम इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं—

कहि विसेस सामान्य पुनि कै सामान्य विसेष।
सो अर्थातरन्यास है, बरनत मति उल्लेख।।

(ललित ललाम, 289)

उदाहरण—

टेढ़ जानि वंदै सब काहू, वक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू।

यहाँ द्वितीय वाक्य प्रथमवाक्य के समर्थन में प्रयुक्त हुआ है।

निदर्शना

दो पदार्थों का सम्भव या असम्भव सम्बन्ध उनमें सादृश्य की कल्पना कराए तो निदर्शना अलंकार होता है। आचार्य वामन निदर्शना को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

क्रिययैव स्वतदर्थान्वयख्यापनं निदर्शनम्।

(काव्यालंकार सूत्र 4/3)

अर्थात् क्रिया के द्वारा अपना अथवा अपने प्रयोजन के सम्बन्ध का बोधन करने को निदर्शना कहते हैं।

आचार्य केशवदास निदर्शना की परिभाषा देते हुए कहते हैं—

कौनहु एक प्रकार ते सत अरु असत समान।
करिए प्रगट निदर्शना समुझत सकल सुजान।।

उदाहरण—

रसवारे प्यारे परम अरुनारे अति ऐन।
कमलन के गुन गहि रहे, नवनागरि तुव नैन।।

यहाँ उपमान कमलों के गुण को नायिका के नेत्रों (उपमेय) में स्थापित किया गया है। अतः निदर्शना है।

अप्रस्तुत प्रशंसा

जहाँ अप्रस्तुत के कथन से प्रस्तुत की प्रतीति हो वहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है। आचार्य मम्मट अप्रस्तुत प्रशंसा को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—

अप्रस्तुतप्रशंसा या सैवप्रस्तुताश्रया।

(काव्य प्रकाश 10/98)

अर्थात् अप्रस्तुत के कथन से प्रस्तुत विषय का आक्षेप करना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

उदाहरण—

माली आवत देखि कै कलियाँ करी पुकार।
फूली-फूली चुनि लियो, काल्हि हमारी बार।।

यहाँ माली एवं काल के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु का संदेश दिया गया है।

समासोक्ति

जब प्रस्तुत वृत्तान्त के द्वारा अप्रस्तुत वृत्तान्त की प्रतीति हो तो समासोक्ति अलंकार होता है। आचार्य उद्भट समासोक्ति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—

प्रकृतार्थेन वाक्येन तत्समानैविशेषणैः।
अप्रस्तुतार्थकथनं समासोक्तिरुदाहृता।।

(काव्यालंकार सारसंग्रहः 2/10)

अर्थात् प्रकृत (प्रस्तुत) के कथन से समान विशेषण द्वारा अप्रकृत्त (अप्रस्तुत) की प्रतीति के निर्देश के कारण समासोक्ति होता है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार—

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्ग विशेषणैः।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्यवस्तुना।।

(साहित्य दर्पण 10/56)

अर्थात् जिस वाक्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत में समान रूप से अन्वित कार्य, लिङ्ग और विशेषण के द्वारा प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार का समारोप हो, वहाँ समासोक्ति होती है।

भिखारीदास कहते हैं—जहँ प्रस्तुत में पाइये अप्रस्तुत को ज्ञान।
कहुँ वाचक कहुँ श्लेष तें, समासोक्ति पहिचान।।

(काव्यनिर्णय 10/19)

उदाहरण—

नहिं पराग नहिं मधुरमधु नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौं विध्यौ, आगे कौन हवाल।।

यहाँ प्रस्तुत भ्रमर के कार्य से अप्रस्तुत कामुक पुरुष के कार्य की व्यंजना या समारोपण के कारण समासोक्ति अलंकार है।

अतिशयोक्ति

अतिशयोक्ति का अर्थ है अतिशय कथन। जब उपमान उपमेय को छिपाकर उसके साथ अभेदस्थापन करे या उपमान द्वारा उपमेय ज्ञान हो तो अतिशयोक्ति अलंकार होगा। आचार्य दण्डी ने अतिशयोक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया है—

विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्त्तिनी।
असावतिशयोक्तिः स्यादलंकारोन्तमं यथा।।

(काव्यादर्श 2/214)

अर्थात् लोकसीमा का उल्लंघन करके प्रस्तुत वस्तुगत उत्कर्ष के वर्णन की इच्छा अलंकारों में उत्तम अतिशयोक्ति है।

उदाहरण—

फबि फहरै अति उच्च निसाना।
जिन मँह अँटकत विवुध विमाना।।

यहाँ ऊँची ध्वजा में देव विमानों का अटक जाना अयोग्यता में योग्यता प्रदर्शन है।

आचार्यो ने अतिशयोक्ति के सात भेद बताये हैं—

1. सम्बन्धतिशयोक्ति—जब दो वस्तुओं में सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताया जाय।
2. असम्बन्धातिशयोक्ति—जब सम्बन्ध होने पर भी सम्बन्ध न बताया जाय।
3. चपलातिशयोक्ति—जब कारण के होते ही तुरन्त कार्य हो जाय।
4. अक्रमातिशयोक्ति—जब कार्य और कारण एक साथ हों।
5. अत्यन्तातिशयोक्ति—जब कारण से पहले कार्य हो।
6. भेदकातिशयोक्ति—जब निराला, न्यारा आदि शब्दों से किसी की अत्यन्त प्रशंसा की जाय।
7. रुपकातिशयोक्ति—जब उपमेय का लोप कर उपमान कथन हो।

पर्यायोक्ति

पर्यायोक्ति का अर्थ है अन्य प्रकार से कथन। किसी पदार्थ का जिस प्रकार से कथन किया जाता है यदि उसे छोड़कर अन्य तरीके से कथन किया जाय तो पर्यायोक्ति होती है।

आचार्य विश्वनाथ कहते हैं—

पर्यायोक्तं यदा भंग्या गम्यमेवाभिधीयते।

(साहित्यदर्पण 10/6)

अर्थात् अभीष्ट कथन का भंगिमापूर्ण कथन ही पर्यायोक्ति है।

उदाहरण—

फेरि कछुक करि पौंरिते फिरि चितई मुसक्याय।
आई जामन लेन तिय, नेंहै गई जमाय।।

जामन लेने के बहाने प्रेम उत्पन्न कर नायिका का जाना पर्यायोक्ति है।

विभावना

प्रसिद्ध कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति विभावना है आचार्य विश्वनाथ विभावना की परिभाषा इस प्रकार देते हैं—

विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।

(10/66)

अर्थात् जहाँ हेतु के विना (अभाव में) जहाँ कार्योत्पत्ति का वर्णन हो वहाँ विभावना होता है।

आचार्य केशवदास कहते हैं—

कारज के बिनु कार जहिं उदौ होत जेहिं ठौर।
तासों कहत विभावना, केशवकवि शिरमौर।।

उदाहरण—

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना, कर बिनु कर्म और विधिनाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वानी वकता बड़ जोगी।।

अर्थात् बिना पैर के चलना, बिना हाथ के काम करना, मुख के बिना रसों का भोग करना तथा जीभ के अभाव में वक्ता होना, विभावना है।

इसके छह भेद होते हैं—

प्रथम विभावना—जहाँ कारण के बिना कार्य की सिद्धि

द्वितीय विभावना—जहाँ सम्पूर्ण कारण से कार्य का पूर्ण होना वर्णित हो।

तृतीय विभावना—जहाँ बाधक कारण होने पर कार्य की सिद्धि हो।

चतुर्थ विभावना—जहाँ मूल कारण के अभाव में दूसरे कारणों से कार्य की सिद्धि।

पंचम विभावना—जहाँ विपरीत एवं विरोधी कारण से कार्य की सिद्धि।

षष्ठ विभावना—जहाँ कल्पित कारण से कार्य की सिद्धि।

विशेषोक्ति

विशेषोक्ति का अर्थ है—विशेष उक्ति अर्थात् विशेषो में कारण के होने पर भी कार्य का न होना वर्णित होता है। आचार्य मम्मट कहते हैं—

विशेषोक्तिरखंडेषु कारणेषु फलावचः

(काव्य प्रकाश 5/4)

अर्थात् अखंड या पूर्ण कारण के रहने पर भी कार्य के न होने को विशेषोक्ति कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ विशेषोक्ति को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथाद्विधा।

(साहित्यदर्पण 10/67)

अर्थात् हेतु के होते हुए भी जहाँ फल का अभाव दिखाई पड़े उसे विशेषोक्ति कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है।

आचार्य केशवदास कहते हैं—

विद्यमान कारण सकल, कारण होतन सिद्ध।
सोई उक्ति विशेषमय, केशवपरमप्रसिद्ध।।

(*कविप्रिया पृ. 245*)

उदाहरण—

नेह न नैननि को कहू उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय।।

यहाँ जल के नित्यप्रति रहने पर भी नेत्रों की प्यास नहीं बुझना विशेषोक्ति है।

असंगति

इसमें कारण का होना कहीं और कार्य का होना कहीं वर्णित होता है। आचार्य विश्वनाथ इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं—

कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसंगतिः

(*साहित्य दर्पण 10/69*)

अर्थात् कार्य तथा करण का भिन्न-भिन्न स्थानों पर वर्णन ही असंगति है।

कुलपति इस सम्बन्ध में कहते हैं—

कारन कारज वरनिये न्यारे-न्यारे ठौर।
समुझावै जु विरोध सों, सु असंगति शिरमौर।।

असंगति के प्रथम, द्वितीय, तृतीय अंसगति करके तीन भेद हैं।

उदाहरण—

लागत जो कंटक तिहारे पाँइ प्यारे हाइ,
आइ पहिले-ही हिय बोधत हमारे है।

यहाँ पैर में काँटा गड़ता है बिधंता है हृदय। अतः असंगति है।

विरोधाभास

जहाँ वास्तविक विरोध न होकर विरोध का आभास मात्र हो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है अप्पय दीक्षित विरोध को परिभाषित करते हुए कहते हैं—

आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते।

(*कुवलयानन्द पृ. 76*)

अर्थात् विरोध के न रहने पर विरोध का आभास ही विरोधाभास है।

जसवन्तसिंह भाषाभूषण में कहते हैं कि—

भासै जबै विरोध सो बहै विरोधाभास

(भाषाभूषण, पृ. 107)

उदाहरण—

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़े श्याम रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय।।

यहाँ काले रंग में डूबने से उज्ज्वल होना विरोध कथन है। परन्तु इस विरोध का परिहार हो जाता है जब भक्त ज्यों-ज्यों कृष्ण के प्रति अनुराग करेगा त्यों-त्यों उसमें सात्विक भाव भरता जायेगा।

यथासंख्य (क्रम)

जहाँ पूर्व कथित पदार्थों के क्रम का उसी क्रम से अंत तक निर्वाह करने का वर्णन होता है। उसे यथासंख्य अलंकार कहते हैं। आचार्य मम्मट काव्य प्रकाश में परिभाषित करते हुए कहते हैं—

यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः

(काव्य प्रकाश 10/108)

अर्थात् क्रम से कथित पदार्थों का उसी क्रम में वर्णन करने को यथासंख्य कहते हैं।

आचार्य केशवदास भी इसी तरह कहते हैं—

आदि अंत भर वरनिए से क्रम केशवदास।

(कविप्रिया 11/1)

उदाहरण—

अमिय हलाहल मद भरे श्वेत, स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेंहि चितवत इक बार।।

यहाँ अमृत, विष, शराब के रंग एवं गुण का क्रमशः वर्णन है। अतः यथासंख्य है।

व्याजस्तुति

प्रारम्भिक आचार्यों ने व्याजस्तुति का अर्थ निन्दा से स्तुतिपरक वर्णन दिया है। आगे चलकर अलंकारिकों ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा कि जहाँ निन्दा के

बहाने स्तुति और स्तुति के बहाने निन्दा वर्णित हो, उसे ब्याज स्तुति अलंकार कहते हैं—

निन्दास्तुतिभ्यां वाचाभ्यां गम्यते स्तुतिनिन्दयोः।

निन्दा के ब्याज से स्तुति और स्तुति के ब्याज से निन्दा के कथनों से यह दो रूपों में होता है।

उदाहरण—

वाउ वचन मूरति अनुकूला। बोलत वचन झरत जनु फूला।

वाणी से फूल झड़ना प्रशंसा से कटु वाणी कहना निन्दापरक अर्थ व्यंजित हो रहा है।

प्रतिवस्तूपमा

जब उपमेय एवं उपमान वाक्यों का एक साधारण धर्म शब्दान्तर से कथित हो वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। आचार्य विश्वनाथ इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं—

प्रतिवस्तूपमा सा स्यात् वाक्योंगम्य साम्ययोः।
एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिष्यते पृथक।।

जहाँ प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत वाक्य में एक धर्म के कारण साम्य वर्णित किया जाय, वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है।

उदाहरण—नहिं असत्य सम पातक पुंजा, गिरि समय होहिं कि कोटिक गुंजा जहाँ प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों वाक्यों में सादृश्य प्रस्तुत किया गया है।

तुल्योगिता

जब अनेक प्रस्तुतों को या अनेक अप्रस्तुतों को एक ही धर्म (साधारण धर्म) से अन्वित किया जाय। आचार्य मम्मट कहते हैं—

नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता।

(काव्यप्रकाश 10/104)

अर्थात् जब प्रस्तुतों द्वारा अप्रस्तुतों का एक धर्म कथन करना तुल्योगिता है।

उदाहरण—

मंद मंद जब तें भई, चंदमुखी तब चाल।
मन मलीन तब तें भये, मत्त मतंग मराल।।

यहाँ मतंग और मराल का एक धर्म मलीन कथित है। अतः तुल्योगिता है।

तद्‌गुण

अपने गुण का त्याग कर निकटस्थ उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु का गुण ग्रहण करना तद्‌गुण अलंकार है। आचार्य जयदेव इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं—

तद्‌गुणः स्वगुणात्यागदन्यतः स्वगुणोदयः

(चन्द्रालोक 5/102)

पद्‌माकर कहते हैं—

तजि निजगुन गुन और को गहै जुतद्‌गुन सोइ

(पद्‌माभरण, पृ. 237)

उदाहरण—

अधर धरत हरि कै परत ओंठ दीठि पट जोति।
हरित बाँस की बांसुरी इन्द्र धनुष रंग होति।।

हरे बाँस की बाँसुरी कृष्ण के अधरों का रंग ग्रहण कर अपने रंग का परित्याग करने के कारण तद्‌गुण है।

अतद्‌गुण

सम्भव होने पर भी जब कोई वस्तु समीपवर्ती वस्तु का गुण ग्रहण न करे तो अतद्‌गुण होता है। आचार्य रुय्यक कहते हैं—

सति हेतौ तद्‌गुणाननुहारेऽतद्‌गुणः।।

(अलंकार सर्वस्व पृ. 142)

अर्थात् कारण के रहते हुए भी एक वस्तु दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण न करे तो अतद्‌गुण अलंकरण होता है।

उदाहरण—

चंदन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग।

चंदन विषैले सर्पों के संसर्ग में आने पर अपनी शीतलता का गुण नहीं छोड़ते बताया गया है। अतः अतद्‌गुण है।

मीलित

सादृश्य के कारण एक वस्तु में दूसरी वस्तु इस प्रकार मिल जाय कि दोनों में किसी प्रकार का भेद ज्ञान न रहे। उसे मीलित कहते हैं। जयदेव कहते हैं—

मीलितं बहुसादृश्याद् भेद एव न लक्ष्यते।

(चन्द्रालोक 5/34)

सादृश्य के कारण दो वस्तुओं में भेद न दिखाई पड़ने को मीलित कहते हैं।

उदाहरण—

बरन वास सुकुमारता सब विधि रही समाय।
पँखुरी लगी गुलाब की गाल न जानी जाय।।

रस, सुगंध और कोमलता की समानता के कारण नायिका के कपोल पर लगी गुलाब की पंखुड़ी का ज्ञान न होना मीलित है।

उन्मीलित

एक वस्तु में दूसरी वस्तु के छिप जाने पर किसी कारण विशेष से भेद का ज्ञान होना उन्मीलित अलंकार है। अप्पयदीक्षित इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं—

भेद वैशिष्ट्योः स्फूर्तावुन्मीलित विशेषकौ।

(कुवलयानंद 148)

अर्थात् मीलित में किसी कारण विशेष से भेद प्रकट होने को उन्मीलित कहा।

उदाहरण—

मिलि चंदन वेदी रही गोरे मुख न लखात।
ज्यों-ज्यों मदलाली चढ़े त्यों-त्यों उघटत जात।।

गोरे मुख में छिपी हुई चंदन की बिन्दी मदलाली छाने पर प्रकट हो गई। अतः उन्मीलितहै।

अपह्नुति

अपह्नुति का अर्थ है छिपाया हुआ मूलतः प्रस्तुत को छिपाकर अप्रस्तुत का उस गोप्य पर आरोपण ही अपह्नुति कहलाती है। आचार्य विश्वनाथ इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं—

प्रकृतं यत् निषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः

(साहित्यदर्पण 10/38)

जहाँ प्रस्तुत का निषेध करके अप्रस्तुत का उस पर आरोपण किया जाय वहाँ अपह्नुति अंलकार होता है।

कुलपति अपह्नुति के लक्षण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि—

करि निषेध उपमेय कौ जहँ थापै उपमान।
बहुविधि वाचक भेद ते ताहि अपह्नुति जान।।

(रसरहस्य 8/60)

उदाहरण—

किंसुक गुलाब कचनार और अनारन की
डारन पै डोलत अंगारन को पुंज है।

यहाँ निर्दिष्ट वृक्षों के पुष्पों को छिपाकर उसके स्थान पर अंगार पुंजो अर्थात् असत्य उपमानों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

इसके पाँच भेद हैं—

1. शुद्धापह्नुति
2. हेत्वापह्नुति
3. पर्यस्तापह्नुति
4. भ्रान्त्यापह्नुति
5. छेकापह्नुति

परिसंख्या

किसी वस्तु के गुणादि को उस वस्तु के अन्य स्थानों से हटाकर एक ही स्थान पर प्रतिस्थापित कर देना परिसंख्या है। जयदेव कहते हैं—

परिसंख्या निषिध्यैकमन्यस्मिन् वस्तुयंत्रणम्।

(चन्द्रालोक 5/95)

अर्थात् एक पदार्थ का एक स्थानसे निषेधकर अन्य स्थान पर उसे स्थित दिखलाने में परिसंख्या है।

जसवंत सिंह भाषाभूषण में कहते हैं—

परिसंख्या इक थल वरजि, दूजे थल ठहराइ।

(भाषाभूषण, 106)

उदाहरण—

मूलन ही की अधोगति जहँ केसव गाइय।
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाइय।।

अधोगति केवल जड़ों की और नगर में मलीनता केवल होम के घूम से होना, परिसंख्या है।

मुद्रा

जहाँ वर्ण्य विषय में अर्थान्तर भंगिमा के साथ-साथ संज्ञार्थ की अप्रकरणिक व्यंजना का नाम मुद्रा अलंकार है।

उदाहरण—

पाण्डवकी प्रतिमा सम देखौ अर्जुन भीम महामति लेखौ।

पंचवटी में वृक्षों के प्राकरणिक अर्थ के साथ अर्जन एवं भीमवीर योद्धाओं की व्यंजना के कारण मुद्रा अलंकार है।

लोकोक्ति

सादृश्य आदि की सिद्धि के लिए लोक में वर्णित विविध मुहावरों एवं उक्तियों के दृष्टांत को लोकोक्ति अलंकार कहा जाता है। आचार्य अप्पय दीक्षित के अनुसार—

लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति भव्यते।

उदाहरण—

इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि कुम्हिलाहीं।

यहाँ लोकोपवाद "तरजनी के संकेत से कुम्हड़े की बतिया का सूख जाना" के कारण यहाँ लोकोक्ति है।

विनोक्ति

काव्यप्रकाश कारण आचार्य मम्मट विनोक्ति को इस प्रकार परिभाषित करते हैं—

विनोक्तिः सा विनोऽन्येन यत्रान्यः सन्नेतरः

अर्थात् किसी वस्तु का शोभन या अशोभन बिना, हीन आदि द्वारा जहाँ वर्णित किया जाये वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—

जिमि भानु बिनु दिन प्रान बिनु तनु, चंद बिनु जिमि चाँदनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझिधौं जिय भामिनी।।

यहाँ 'बिन' के अनेक प्रयोगों द्वारा आयोध्या के तेजहीन का वर्णन विनोक्ति अलंकार है।

सहोक्ति

जहाँ सहवाची शब्दों के द्वारा अनेक कार्य-व्यापारों में एक धर्म का वर्णन किया जाय, वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—

बलु प्रताप वीरता बड़ाई,नाक पिनाकहिं संग सिधाई।

यहाँ बल प्रताप, वीरता, प्रतिष्ठा का धनुष नष्ट होने के साथ-साथ नष्ट हो जाना, सहोक्ति अलंकार का सूचक है।

परिकर

जहाँ किसी काव्यवाक्य में कोई विशेषण पद साभिप्राय नियोजित हो उसे परिकर अलंकार कहते हैं। आचार्य अप्पय दीक्षित कहते हैं—

अलंकारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे

(कुवलयानन्द 62)

अर्थात् जहाँ साभिप्राय विशेषण हो वह परिकर अलंकार है।

उदाहरण—

चक्रपाणि हरि को निरखि असुर जात भगि दूर।

यहाँ हरि का विशेषण चक्रपाणि साभिप्राय कवि द्वारा प्रयोग किया है।

परिरकरांकुर

आचार्य जयदेव चन्द्रलोक में परिकरांकुर को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—

अभिप्राय विशेष्येतु भवेत परिकरांकुरः

(चन्द्रलोक 5/40)

अर्थात् काव्य में जब साभिप्राय विशेष्य प्रयुक्त हो तो परिकरांकुरअलंकार होगा।

उदाहरण—

वामा भामा कामिनी कहि बोलो प्राणेस।
प्यारी कहत खिसात नहिं पावस चलत विदेस।।

यहाँ प्राणेश एवं प्यारी का कथन साभिप्राय किया गया है अतः परिकरांकुर है।

□□□

छन्द शास्त्र

परिचय—छन्द शब्द की व्युत्पत्ति छद् धातु से हुई है। छदि संवरणे के अनुसार छदि धातु का उपयोग छिपने के अर्थ में है। निघण्टु में छन्द 'धातु का भी उल्लेख हुआ है। जिसका अर्थ बन्धन से है। एक अन्य स्थल पर छन्द शब्द का अर्थ अच्छादन बताया गया है—छन्दासि आच्छादनति् आच्छादित करने के कारण छन्द कहा गया है। सायण ने छन्द शब्द को स्पष्ट करते हुए बताया है कि—'अपमृत्युं वारयितुं आच्छादयति इति छन्दः' अर्थात् कवि और उसकी कृति को जो अपमृत्यु से बचाता है वह छन्द है।

छन्द की अनेक रूपों में परिभाषित करने की चेष्टा की गयी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे परिभाषित करते हुए बताया है कि—''छोटी-छोटी सार्थक ध्वनियों के प्रवाहपूर्ण सामंजस्य का नाम छन्द है।'' डॉ0 जगदीश गुप्त 'हिन्दी साहित्यकोश' में छन्द को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—'अक्षर, अक्षरो कीसंख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रागणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद रचना छन्द कहलाती है।

जगदीश गुप्त द्वारा दी गयी परिभाषा अक्षर, उसकी सुख्या, मात्रा आदि छन्द के अनिवार्य गुण नहीं है वरन, शुक्ल को प्रवाहपूर्ण सामंजस्य, छन्द का स्थायी धर्म है। जिसका तात्पर्य 'लय' है। काव्य में उपयुक्त शब्दों की लययुक्त व्यवस्था का नाम ही छंद है। अमरकोश में लय को परिभाषित करते हुए बताया गया है—'लयः साम्यम्' अर्थात् रचना के वाह्य एवं अन्तवर्ती अन्विति का नाम लय है। साथ ही यह भी बताया गया है कि 'लयाऽधारो छन्दः' छन्द लायाश्रित होता है। एक अन्य स्थल पर कहा गया है। पादन्यासो लयमनुगतः अर्थात् छन्द का प्रत्येक चरण लय से परिशासित होता है। लय ही छन्द का प्राण है। छन्द का मुख्य कार्य लय को रूप देना नहीं है अपितु वह साधारण बोलचाल में प्रयुक्त गद्य को नियमित करता है अर्थात् साधारण गद्य को जब हम कविता के रूप में रखते हैं तो लय का सहरा लेते हैं। आई. ए. रिचर्ड्स छन्द के सम्बन्ध में कहता है कि छन्द कवि और पाठक दोनों को सम्भावित लयों के अनिश्चित एवं विस्तृत संसार में एक सुदृढ़ आधार तथा अभिविन्यास को एक निश्चित बिन्द देता है। जॉन क्रो रैंसम कहता है कि काव्य में छन्द ऐसी वस्तु

की ओर संकेत करता है। जिसका सम्बन्ध किसी शब्द, किसी पंक्ति तथा पद्यांश की ध्वनि से होता है। अज्ञेय छन्द को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि छन्द का अर्थ केवल तुक या बँधी हुई समान स्वर मात्रा या वर्ण संख्या नहीं है... छन्द योजना का नाम है। जहाँ भाषा की गति नियन्त्रित है वहाँ छन्द है।

छन्द का इतिहास—प्राचीन संस्कृत साहित्य के साथ-साथ छन्द का इतिहास जुड़ा हुआ है ऋग्वेद के दशम मण्डल के पुरुष सूक्त में निर्दिष्ट किया गया है कि पुरुष से ही छन्द, ऋक, यजु एवं सामवेदों की उत्पत्ति हुई है—

छन्दासि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्माद् जायत्

ऋक प्रातिशाख्य में छन्द ऋषि की उत्पत्ति कथा दी गई है। इसके रचनाकर शौनक ने बताया है कि सातों वैदिक छन्दों प्रजापति, देव एवं असुर के संयोग से छन्द ऋषि की उत्पत्ति हुई। इसका मन्तव्य यही है कि वैदिक संस्कृत साहित्य के साथ छन्दों का अभिन्न सम्बन्ध है और सायण आदि भाष्यकारों ने प्रारम्भ से ही इसके शास्त्रीय विधानों की ओर संकेत किया है। सम्पूर्ण भारतीय (संस्कृत से लेकर हिन्दी तक) छन्द के इतिहास को चार क्रमों में विभक्त करके देखा जा सकता है—

1. अक्षर विधान
2. गण विधान
3. मात्रा विधान
4. लय

अक्षर विधान क्रम—ईसापूर्व में लिखे जाने वाले वैदिक साहित्य के छन्द 'अक्षर विधान' से परिशासित थे। लयात्मकता के लिए आधार उदान्त, अनुदात्त, स्वरित की उच्चारण विधि थी। अक्षर संख्या पर आधारित छन्द उच्चारण विधि से अनुशासित थे। गायत्री में 24 अक्षर, तीन चरण, उष्णिक में तीन चरण प्रथम द्वितीय में आठ-आठ अक्षर एवं तीसरे में 12 अक्षर, कुल 28 अक्षर, अनुष्टुप में आठ अक्षर, और चरण कुल मिलाकर 32 अक्षर, वृहती मे तीन चरणों में आठ-आठ तथा अन्त में 12 कुल 36 अक्षर, इसी प्रकार पंक्ति छन्द—5 चरण × प्रत्येक चरण के आठ अक्षर, कुल 40 अक्षर। त्रिष्टुप में चार चरण प्रत्येक में 11 अक्षर कुल 44 अक्षर तथा विराज में 2 चरण प्रत्येक में 10 अक्षर कुल 20 अक्षर।

गणविधान—इसके पश्चात् लौकिक संस्कृत साहित्य के छन्दों का विकास गणात्मक क्रम में हुआ। यह प्रारम्भ में अक्षरात्मक ही रहा है किन्तु आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के निर्दिष्ट नियमों को देखने पर पता चलता है कि इसका गणात्मक स्वरूप धीरे-धीरे लयाश्रित होकर विकसित हुआ है। मात्राओं के युग्मक या त्रिक् को

गण माना गया है। कई छन्दशास्त्री दो अक्षरों की इकाई को 4 भेदों में रखकर गण बना देते हैं। यथा—

ऽ ऽ

। ऽ

ऽ ।

। ।

किन्तु इन चार गणों की योजना अधिक प्रचलित नहीं हुई। आचार्य भरत द्वारा निर्दिष्ट त्र्यक्षरी गण ही अधिक प्रचलित हैं—

मगण — ऽ ऽ ऽ

यगण — । ऽ ऽ

रगण — ऽ । ऽ

सगण — । । ऽ

तगण — ऽ ऽ ।

जगण — । ऽ ।

भगण — ऽ । ।

नगण — । । ।

आचार्य भरत ने इन गणों के अतिरिक्त लघु गुरु दो शब्दों का विधान किया है। इसको स्पष्ट रूप से स्मरण रखने के लिए यमाताराजभानसलगम् का सूत्र दिया गया। इसे त्रिक के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वर संगीत रचना के तार मध्य और मन्द्र एवं सामान्य परिगणना में सम, विषम तथा अर्ध सम से सम्बन्धित किया गया।

मात्रा-विधान—आचार्य भरत के पूर्व से ही मात्राश्रित 'जाति' छन्दों का प्रयोग मिलता है। इनमें लघु एवं गुरु मात्राओं (।ऽ) का प्रयोग मिलता है। प्राकृत, अपभ्रंश काल में गणविधान प्रायः टूटने में लगे और अक्षरों का स्थान मात्राओं ने लिया। ह्रस्व एवं दीर्घ उच्चारण काल से नियन्त्रित हुए जिस उच्चारण का सम्बन्ध लघुतम काल की इकाई से हो वह लघु है और जिसका सम्बन्ध उस उच्चारण के लघुतम अन्तराल से अधिक या दूना हो वह दीर्घ है। यह विधान गण विधान से अधिक सहज और सरल है। इसलिए गणात्मक व्यवस्था अन्त में मात्रा विधान में परिणत हुई।

लयविधान—आधुनिक हिन्दी साहित्य में विशेष रूप से निराला द्वारा लयात्मक छन्दों की चर्चा शुरू हुई। छन्द के वाह्य आवरण अक्षर, रचना, गण, मात्रा विधान आदि पूरी तरह टूटे। प्रारम्भ में संकीर्ण दृष्टि के आलोचकों ने इसे मुक्त छन्द केचुआ रवर छन्द के नाम से पुकारा किन्तु क्रमशः यह स्वीकार कर लिया गया कि काव्यभाषा

के लिए लयात्मक प्रवाह उसका एक महत्त्वपूर्ण आधार है। निराला इसके आधार वेद मानते हैं उनके अनुसार मुक्त छन्द वह है जो छन्द की भूमि पर भी रहकर भी मुक्त है। इसमें कोई नियम नहीं केवल प्रवाह कवित्त छन्द सा जान पड़ता है। मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह है वही उसे छन्द सिद्ध करता है और नियम रहित्य उसकी मुक्ति। वे अपनी जागरण कविता में इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं कि—

अलंकार लेश रहित श्लेष हीन
शून्य विशेषणों से
नग्न नीलिमा सी व्यक्त
भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी—
मुक्तछन्द
सहज प्रकाशन वह मन का
निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र।

(परिमल-जागरण)

नयी कविता में लयात्मक प्रवाह को ही काव्यभाषा की आंतरिक संरचना का मूल तत्त्व स्वीकार किया गया। इस लय को तोड़कर छन्द रचना करने और प्रकारान्तर से अर्थ लय को आधार बनाने की चर्चा आधुनिक साहित्य में बराबर होती रही है।

पारिभाषिक शब्द

पाद या चरण—छन्द की प्रत्येक पंक्ति को पाद का चरण कहा जाता है। हिन्दी के छन्द दो चरणों से लेकर छह चरणों तक के होते हैं। दोहा में दो चरण एवं छप्पयमे छह चरण छन्द के लघुतम एवं वृहत्तम छन्द के उदाहरण माने जा सकते हैं। इसे एक प्रकार से सन्तुलित खण्ड के नाम से भी पुकारा गया है तथा छन्द लक्षण को चरितार्थ कराने के कारण इसे छन्द योनि की भी संज्ञा मिली है।

वर्ण—एक सम्पूर्ण ध्वनि को वर्ण की संज्ञा दी जाती है। वर्णिक छन्द में इन वर्णों को मूलाधार के रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें ह्रस्व एवं दीर्घ का ध्यान नहीं दिया जाता। अ और आ दोनों पृथक्-पृथक् एक ही वर्ण स्वीकार किये जाते हैं साथ ही संयुक्ताक्षर को भी एक ही वर्ण माना जाता है जैसे—क्यों, ज्यों आदि।

मात्रा—किसी भी ध्वनि के उच्चारण में काल की लघुत्तम इकाई को मात्रा कहा जाता है जैसे 'क' काल की लघुत्तम इकाई के कारण 'लघु' कहा जाता है। इससे अधिक उच्चारण काल होने के कारण दीर्घ कहा जाता है। जैसे—आ इनके चिह्न

लघु - ।

गरु - ऽ

सामान्यतया हिन्दी में इन्हीं चिन्हों का ही प्रयोग किया जाता है। इस लघु-गुरु निर्धारण के नियम इस प्रकार हैं—

1. ह्रस्वस्वर—लघु होते हैं । यही नहीं इन लघु स्वरों के संयोग से बने व्यंजन भी लघु माने जाते हैं जैसे—अ, क म, च कि कु आदि।
2. संयुक्ताक्षर के पहले का वर्ण जिस पर बलाघात नहीं पड़ता लघु माना जाता है जैसे हनुमन्त यहाँ पर 'म' लघु है।
3. चन्द्रबिन्दु युक्त व्यंजन लघु है। जैसे—सँग।
4. दीर्घस्वर एवं उसके संयोग से निर्मित व्यंजन गुरु माने जाते हैं जैसे का, की, के, कै, कौ आदि।
5. बलाघात से प्रभावित लघु व्यंजन गुरु हो जाता है जैसे—गुरुप्रसाद यहाँ गुरु में 'रु' पर जोर देने पर लघु होते हुए भी दीर्घ होगा।
6. संयुक्ताक्षर में हलन्त के पूर्व का वर्ण दीर्घ होगा। जैसे—विष्णु अर्थात् 'वि' दीर्घ है।
7. रेफ के पहले का लघुवर्ण गुरु हो जाता है यथा-मर्म, चर्म, कर्म में म, च, क ये सभी गुरु है।
8. सर्गान्त सभी गुरु होते हैं—जैसे—दुःख में ख गुरु है।

यति—छन्द में प्रयुक्त विराम को यति कहा जाताहै। सामान्यतया इसका सम्बन्ध उच्चरित लय से होता है। बड़े छन्दों में 'अर्थ विराम' एवं छोटे-छन्दों में विराम के स्थान पर यति का प्रयोग होता है।

गति—छन्द के लयात्मक गीति प्रवाह को गति के नाम से जाना जाता है। मात्रिक छन्दों के लिए गति नितान्त महत्त्वपूर्ण हैं। गतिभंग हो जाने से छन्द की मात्रात्मक असिद्धि स्पष्ट रूप से प्रतीति होने लगती है।

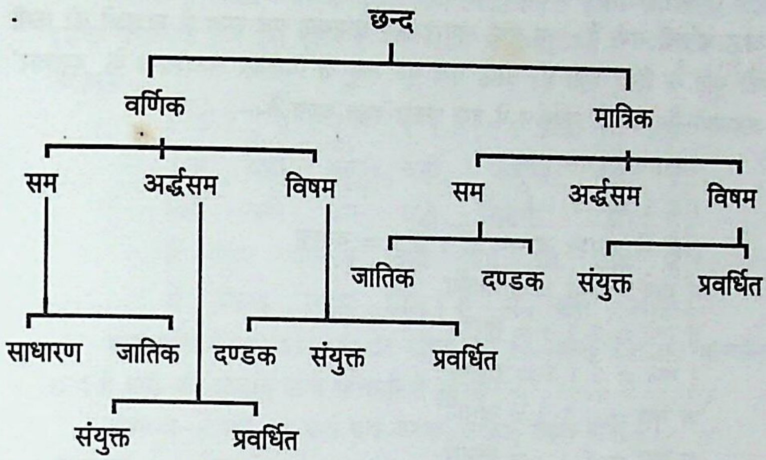
तुक—अन्त्यानुप्रास को तुक कहा गया है। ध्वनि साम्य एवं सन्तुलन तुक के लिए मूलाधार है छन्द के चरणों के अन्त में समान स्वर वर्णों की एकरूपता को तुक की संज्ञा दी गई है।

छन्द के भेद

सामान्यतया छन्द के दो भेद माने गए हैं—

1. वर्णिक
2. मात्रिक

संस्कृत में 'जाति' और 'वृत्त' नाम से इन्हें दो भागों में विभक्त किया गया था। छन्द का पूर्णतः भेद इस प्रकार है—



वर्णिक छन्द—अक्षर या गण पर आधारित छन्दों को वर्णिक कहते हैं।

(क) समवर्णिक—जिन छन्दों के चारों चरणों में वर्णों की संख्या अथवा गणों की समानता रहती है उसे समवर्णिक छन्द कहते हैं। जैसे—मन्दाक्रान्ता।

(ख) विषम वर्णिक—वे वर्णिक छन्द जिनके प्रत्येक चरण की गण या अक्षर की संख्या विषम या बराबर न हो उसे विषम वर्णिक छन्द कहते हैं। जैसे—उद्गता, माधवी आदि।

(ग) अर्धसमवर्णिक—जिन वर्णिक छन्दों में दूसरे तथा चौथे एवं प्रथम तथा तृतीय चरणों में अक्षरों या गणों की समानता हो जैसे—सुन्दरी, पुष्पिताग्रा आदि।

मात्रिक छन्द—मात्रिक छन्द उसे कहते हैं जहाँ मात्राओं का नियमित विधान हो अर्थात् गणना करने से जिस छन्द के प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या नियमित एवं निश्चित हो। इसके भी तीन भेद हैं—

सममात्रिक छन्द—जिन छन्दों के चारों चरणों में मात्राओं की संख्या तथा उनका नियोजन क्रम समान हो। उसे समय मात्रिक छन्द कहा जाता है। जैसे—चौपाई आदि।

विषममात्रिक छन्द—जिन छन्दों के चारों चरण असमान हो अर्थात् प्रत्येक चरण की मात्राएँ भिन्न-भिन्न हो उसे विषम मात्रिक छन्द कहते हैं। उदाहरण—आर्या आदि।

अर्द्धसममात्रिक छन्द—जिन मात्रिक छन्दों के सम-सम एवं विषम-विषम चरणों की मात्राएँ समान हों उन्हें अर्द्धसममात्रिक छन्द कहा जाता है। जैसे—सोरठा आदि।

गणविधान—मात्राओं की त्रिक अन्विति को गण कहा जाता है। इसकी संख्या आठ बतायी गयी है। गुरु तथा लघु इनकी सहायता एवं छन्द में मात्राओं की कमी की पूर्ति के लिए रहते हैं। आठ गण गुरु लघु दो मिलकर छन्दशास्त्र के 'दशाक्षर' कहलाते हैं। इनको सूत्ररूप में इस प्रकार रखा जाता है—

यमाताराजभानसलगम्

। ऽ ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ

इन्हीं से क्रमशः य गण = । ऽ ऽ = यमाता

म गण = ऽ ऽ ऽ = मातारा

त गण = ऽ ऽ । = ताराज

र गण = ऽ । ऽ = राजभा

ज गण = । ऽ । = जभान

भ गण = ऽ । । = भानस

न गण = । । । = नसल

स गण = । । ऽ = सलगं

लघु = ।

गुरु = ऽ

इस प्रकार उपर्युक्त सभी द्वारा गण और उसकी मात्राओं का बोध कराया जाता है।

प्रमुख मात्रिक छन्द : लक्षण तथा उदाहरण

समवर्णिक छन्द

मालिनी—इस छन्द में 15 अक्षर होते हैं। गणात्मक रूप से न न म य य है। अर्थात् गणों की स्थिति—।।। ।।। ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ है।

उदाहरण—

। । । । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ = 15 अक्षर

विलसित उर में है जो सदा देखता सा,

वह निज उर में है ठौर भी क्यों न देता।

नित वह कलपाता है मुझे कान्त हो क्यों,

जिस बिन कलपाते हैं नहीं प्राण मेरे।

यहाँ प्रथम पंक्ति के ।।। ।।। ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ की आवृत्ति या 15 अक्षर सभी पंक्तियों में समान रूप से नियोजित हैं। अतः मालिनी छन्द है।

बसन्त तिलका—इसका दूसरा नाम सिद्धोन्नता है इसमें 14 अक्षर होते हैं। इसका गणात्मक क्रम इस प्रकार है—त भ ज ज तथा अन्त में दो गुरु।

उदाहरण—

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ = 14 अक्षर
कुंजे वही थल वही, जमुना वही है,
बेलें वही वन वही विटपी वही है।
हैं पुष्प पल्लव वही व्रज भी वही है,
ये किन्तु स्याम बिन हैं न वही जानते।

प्रथम पंक्ति में ऽऽ। ऽ।। ।ऽ। ऽऽ सहित कुल 14 अक्षरों के कारण वसन्ततिलका छन्द है इसी की आवृत्ति सभी पंक्तियों में हुई है।

वंशस्थ—इसमें 12 वर्ण एवं जगण, तगण, रगण होता है।

उदाहरण—

सगर्व बोला तब कर्ण भूप से
अमान्य है दुर्मतिपूर्ण मंत्रणा।
परास्त होना रणपूर्ण शत्रु से,
विचार्य है केवल वृद्ध बुद्धि से।

प्रथम पंक्ति में ।ऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽ।ऽ गणों एवं 12 अक्षरों की स्थिति द्रष्टव्य है। यही आवृत्ति सभी पंक्तियों में मिलती है।

द्रुतविलम्बित—इसका दूसरा नाम सुन्दरी भी है। इसमें 12 अक्षर इन गणों के क्रम में रहते हैं— नगण, भगण, भगण और रगण

उदाहरण—

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ = 12 अक्षर
दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला,
तरु शिखा पर थी अवराजती,
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।

इस प्रकार ।।।, ऽ।।, ऽ।ऽ गणों तथा 12 अक्षरों के कारण द्रुतविलम्बित छन्द है।

शालिनी—4, 7 की यति से 11 अक्षरों के मगण, तगण, तगण और अन्त में दो गुरु से विन्यस्त छन्द शालिनी है।

उदाहरण—

ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ = 11 अक्षर, 4 एवं 7 की

कैसी कैसी ठोकर खा रहे हो,
कैसी कैसी, यातना पा रहे हो।

इस प्रकार ऽऽऽ, ऽऽ।, ऽऽ।, ऽऽ गणों तथा 4 एवं 7 अक्षरों की यति से 11 अक्षरों से इस छन्द की रचना की गई है यही आवृत्ति सभी चरणों में हुई है।

उपेन्द्रवज्रा—यह छन्द 11 अक्षरों का जगण, तगण, जगण एवं अन्त में दो गुरु के संयोग से बनाया जाता है।

उदाहरण—

। ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ = 11 अक्षर

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै,
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
बिना विचारे यदि काम होगा,
कभी न अच्छा परिणाम होगा।

इन्द्रवज्रा—यह छन्द 11 अक्षरों का तगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरुओं के संयोग से बनाया जाता है।

उदाहरण—

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ = 11 अक्षर

पा के तुम्हें शेष न और पाना
हो क्योंकि सारे सुख का खजाना।
होते तुम्हीं से नर पूर्ण काम
हे रौप्य मुद्रे! तुझको प्रणाम।

ऽऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽऽ एवं 11 अक्षरों के निर्मित छन्द इन्द्र वज्रा है।

भुजंगी—तीन यगण एवं लघु गुरु के क्रम से 11 अक्षरों का निर्मित छन्द भुजंगी कहलाता है—

नहीं लालसा है विभा! वित्त की,
हमें चेतना चाहिये चित्त की।
भले ही न हो एक भी सम्पदा,
रहे आत्म विश्वास पूरा सदा।

।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽ के संयोग से 11 अक्षरों का यह भुजंगी छन्द है।

राम को रूप निहारति जानकी कंगन के नग की परछाहीं।
यातै सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पलटारति नाहीं।।

ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।। , ऽ।। तथा अन्त में दो गुरु एवं 23 वर्णों के संयोग से निर्मित यह छन्द मन्तगयन्द है।

दुर्मिल (सवैया)—आठ सगण से युक्त छन्द दुर्मिल होता है। इसका दूसरा नाम चन्द्रकला है। इसमें 24 अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ = 24 अक्षर
पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि मंजु बनी मनि माल हिये।
नव नील कलेवर पीत झगा झलकैं पुलकैं नृप गोद लिये।
अरविन्द सो आनन रूप मरंद अनंदित लोचन भृंग पिये।
मन में न बस्यो अस बालक जो तुलसी जग में फल कौन जिये।

।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ एवं 24 अक्षरों के कारण वह दुर्मिल सवैया है।

दण्डक—24 वर्णों से अधिक छन्द को दण्डक के नाम से पुकारा जाता है। मनहरण घनाक्षरी एवं कवित्त इसलिए दण्डक के अन्तर्गत स्वीकार किये जाते हैं।

घनाक्षरी (रूप)—अक्षरों की संख्या 32 तथा यति 8, 8, 8, 8 द्वारा इसे निर्मित किया जाता है। अन्त में गुरु-लघु होता है।

गोरे-गोरे पायंन सो,^{8} कढ़ि रही मंद मंद,^{8}
पायलऔ घुंघरू की,^{8} रसभरी झनकार।^{8} = 32 वर्ण
कर बीच कंकन औ,^{8} कटि बीच किंकिनी हूँ,^{8}
खनकि उठति संग पूरी करि बार-बार।।
धरि जो सतार हाथ पास-पास चलो जात
आँगुरी चलास रह्यो भूमि झनकारि तार।
तार धरि तासु अलबेली मृदु तान छाँढ़ि,
गाय उठी गीत यह अंग गति अनुसार।।

आठ-आठ की यति पर 32 वर्णों के दण्डक छन्द को रूपघनाक्षरी कहते हैं।

देवघनाक्षरी—महाकवि देव ने घनाक्षरी में किंचित परिवर्तन करके उसे 8, 8, 8, 9 के विराम से तैंतीस वर्णों का उसे बनाया। यही नहीं अन्त में नगण सर्वान्त लघु (।।।) की भी योजना दी।

उदाहरण—

·झिल्ली झनकारैं पिक^{8} चातक पुकारैं बन,^{8}
मोरनि गुहारैं उठैं,^{8} जुगनू चमकि-चमकि।^{9}

8, 8, 8, 9 के विराम में तैंतीस वर्ण हैं। अन्त में सर्वान्त लघु है।

मनहरण कवित्त—इसमें कुल 31 वर्णों की योजना होती है यति 8, 8, 8, 7 पर होता है।

उदाहरण—

हरित हरित हार,^{8} हेरत हियो हेरत,^{8}
हारी हौं हारिन नैनी,^{8} हरि न कहूँ लहौं।^{7}
बनमाली ब्रज पर बरसत बनमाली,
बनमाली दूर दुख केशव कैसे सहौं।
हृदय कमल नैन देखि कै कमल नैन
होहुँगी कमल नैनी ओर हौं कहा कहौं।
आप घने घनस्याम, घन की ते होत घन
सावन के द्यौंसघन स्याम बिनु क्यों रहौं।।

यहाँ यति 8, 8, 8, 7 पर होने के कारण यहाँ मनहरणकवित्त है।

प्रमुख मात्रिक छन्द : लक्षण तथा उदाहरण

सम छन्द

तोमर—प्रत्येक चरण में 12 मात्राएँ और चरणान्त लघु एवं गुरु होता है।

उदाहरण—

। । । ऽ ऽ । । ऽ । = 12 ऽ । । । । । । । ऽ । = 12
तब चले वान कराल । फुंकरत जनु बहु काल।
कोपेउ समर श्री राम । चले विसिष निसित निकाम।।

इस प्रकार 12 मात्राओं के कारण यह तोमर छन्द है।

चौपई—पन्द्रह मात्राओं के छन्द को चौपई कहते हैं अन्त में गुरु-लघु का नियम देखा जाता है।

। । ऽ । । । । ऽ । ऽ । = 15
जिनके बल पर खड़ा समाज। रहती है सुचिता की लाज।

15 मात्राएँ तथा अन्त में गुरु-लघु है।

चौपाई—इसमें 16 मात्राएँ होती हैं। यदि प्रथम तुक सम हो तो दूसरा तुक भी सम, यदि प्रथम तुम विषम हो तो दूसरा भी विषम होता है।

तोटक—इस छन्द में 12 अक्षर सहित कुल चार सगण क्रम से रखे जाते हैं—
। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ = 12 अक्षर

जय राम सदा सुख धाम हरे,
रधुनायक सायक चाप धरे।
भव वारण दारण सिंह प्रभो,
उस सागर नागर नाथ विभो।

इस प्रकार ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ एवं 12 अक्षरों के संयोग से तोटक छन्द बनाया गया है।

भुजंगप्रयात—चार यगण एवं 12 अक्षरों वाले छन्द को भुजंगप्रयात कहते हैं—

कहूँ किन्नरी-किन्नरी ले बजावे,
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावै।
कहूँ पक्षिणी पक्षिणी लै पढ़ावै,
नगी कन्यका पन्नगी को नचावै।

12 अक्षर ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ गण के क्रम से रखे गये हैं।

मन्दाक्रान्ता—अक्षर संख्या 17 को मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, दो शुरू क्रम में रखकर मन्दाक्रान्ता छन्द बनाते हैं। यति 4, 6, 7 वें अक्षर पर होती है।

उदाहरण—

ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ = 17 अक्षर

दो वंशों में प्रकट करके पावनी लोक लीला।
सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियाँ पुण्यशीला।
त्यागी भी हैं शरण जिनके जो अनासक्त गेही।
राजा जोगी जय जनक वे पुष्प देही विदेही।

इस प्रकार ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ गणों के क्रम से 17 अक्षरों से युक्त यह छन्द मन्दाक्रान्ता है।

शिखरिणी—यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तथा अन्त 'लघु-गुरु' से युक्त 17 अक्षरों के छन्द को शिखरिणी कहा गया है। इसमें यति छठवें वर्ण पर होती हैं।

उदाहरण—

I S S S S S I I I I I S S I I I S = 17 अक्षर

कुचालो ने मारे मनुज मतवाले कर दिये।
कुपंथों में सारे निपट कटुभाषी भर दिये।
हठीले होने को हठ न अगुओं की मति हरे।
हमारे रोने को सुनकर कृपा शंकर करें।

ISS, SSS, III, IIS, SII, IS गणों एवं लघु गुरु से युक्त 16 अक्षरों के छन्द को शिखरिणी माना गया है।

शार्दूलविक्रीडित—19 अक्षरों के मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण तथा अन्त में दो गुरु के साथ शार्दूलविक्रीडित छन्द बनता है। 12वें अक्षर पर यति होती है।

उदाहरण—

S S S I I S I S I I I S S S I S S I S = 19 अक्षर

सायंकाल हवा समुद्र तट की आरोग्यकारी यहाँ।
प्रायः शिक्षित सम्य लोग नित ही जाते इसी से वहाँ।।

SSS, IIS, ISI, IIS, SSI, SS। से युक्त 19 अक्षरों का यह छन्द शार्दूलविक्रीडित है।

मदिरा (सवैया)—सात भगण अन्त में एक गुरु के संयोग से मदिरा सवैया निर्मित होता है। यह जाति प्रकृति का छन्द है।

उदाहरण—

S S I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S

सिंधु तरयो उनको बनरा तुम पै धनु रेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बंध्यो उन वारिधि बाँधिके बाट करी।
श्री रघुनाथ प्रताप की बात तुम्हें दस कंठ न जानि परी।
तेलहु तूलहु पूँछ जरी न जरी जरि लंकि जराइ जरी।।

SSI, SII, SII, SII, SII, SII, SII तथा S के कारण यह मदिरा सवैया इसी की आवृत्ति प्रत्येक चरण में होती है।

मन्तगयंद (सवैया)—23 अक्षरों से युक्त सात भगण और अन्त में दो गुरु वाली सवैया को मन्तगयंद कहते हैं—

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S = 23 वर्ण

दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माही।
गावति गीत सवै मिलि सुन्दरि वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाही।

यहाँ 28 मात्राओं के कारण सार छन्द है।

वीर (आल्हा)—16, 15 की यति से 31 मात्राओं वाले छन्द को वीर या आल्हा कहते हैं। गुरु-लघु का अन्त में आना आवश्यक है।

उदाहरण—

S I I I S S I S I S I S I I I S I = 31 मात्रा

दोउ पद धावें बड़े प्रेम ते स्वामी कृष्ण चन्द्र महराज।

चक्र सुदर्शन लेकर डोलत साधत सन्तन के सब काज।

16, 15 की यति से 31 मात्रा का यह छन्द वीर या आल्हा है।

अर्ध सममात्रिक छन्द

बरवै—19 मात्राओं वाले छन्द को बरवै कहते हैं प्रथम एवं तृतीय चरण में 13 तथा द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में 6 मात्राएँ होती है।

उदाहरण—

I S I I I I I I I I I S I I S I = 19 मात्राएँ

जटा मुकुट कर सरधनु संग मरीच।

चितवनि बसति कनखियनु अंखिमनु बीच।।

19 मात्राएँ तथा यति 13, 6 घर होने के कारण बरवै है।

दोहा—यह 24 मात्राओं का छन्द है प्रथम-तृतीय पद में 13-13 एवं द्वितीय-तथा चतुर्थ पद में 11-11 मात्राएँ होती हैं। तुक समपदों में ही मिलताा है।

उदाहरण—

I S I S I I S I I I S I I I I S I I = 24 मात्राएँ

यथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।

कौतुक देखत सैल बन भूलत भूरि निधान।।

24 मात्राओं तथा 13 11 के चरणों से युक्त होने से दोहा छन्द है।

सोरठा—सोरठा दोहा के विपरीत होता है एवं 11 एवं 13 की यति सहित कुल 24 मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण—

S S I I I I S I I S S I I I S I I I = 24 मात्राएँ

बंदौ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।

महा मोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर।।

सम विषम चरणों में क्रमशः 13, 11 के साथ कुल 24 मात्राएँ हैं।

अतः सोरठा है।

उल्लाला—यह 28 मात्राओं का छन्द है। इसमें विषम चरणों में 15 तथा सम चरणों में 13 मात्राएँ रहती हैं।

उदाहरण—

S । । । S । S S । S । । S । । S S । S = 28 मात्राएँ

हे शरणदायिनी देवि तू, करती सबका त्राण है।
हे मातृभूमि! संतान हम, तू जननी तू प्राण है।

विषम मात्रिक छन्द

कुंडलिया—यह रोला तथा दोहा छन्दों के योग से बनाया जाता है। दोहे के चौथे चरण को रोला के प्रथम चरण में रखकर दुहराया जाता है।

दोहे का प्रथम चरण ही रोला के अन्त में रखा जाता है।

उदाहरण—

गुन के गाहक सहसनर, बिनुगुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, सब्द सुनै सब कोय।
सब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को इक रंग, काग सब भये अपावन।
कह गिरिधर कविराय सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के।

छप्पय—यह रोला तथा उल्लाला के संयोग बनाया जाता है। दो रोला तथा अन्त में एक उल्लाला छन्द मिलकर इसे पूर्ण बनाता है।

उदाहरण—

नीलाम्बर परिधान हरित तट पर सुन्दर है।
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है। *दो रोला*
नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डन हैं।
बन्दी विविध विहंग शेषफन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश की।

एक उल्लाला

□□□

उदाहरण—

S I I I I I I I I I I I I I S S = 16

वंदहुँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समय सकल भवरुज परिवारू।

16 मात्राओं के कारण यह चौपाई छन्द है।

अरिल्ल या अडिल्ल—16 मात्राओं के अरिल्ल छन्द में जगण (ISI) का निषेध बताया गया है। अन्त में यगण (ISS) या दो गुरु-लघु रहते हैं।

उदाहरण—

S S I I I I S I I S I I = 16 मात्राएँ

फूली कलि तरु फूल बढ़ावत।
मोह महा मोहत उप जावत।।

16 मात्राएँ एवं अन्त: में दो लघु के कारण यह अरिल्ल छन्द है।

लावनी (राधिका)—प्रत्येक चरण में 13, 9 के विराम से 22 मात्राओं के छन्द को लावनी कहते हैं। चरण के अन्त में गुरु रहता है।

उदाहरण—

I I S I S I I S S I S S S S = 22 मात्राएँ

उन सीता को निज मूर्तिमती माया को,
प्रणय प्राणा को और अन्त कान्त काया को।
यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी।
योगी को आगे अलख ज्योति ज्यों जागी।

22 मात्राओं के कारण यह राधिका छन्द है।

रोला—11 और 13 के विराम से रोला में 24 मात्राएँ होती है। अन्त में दो गुरु माना जाता है। किन्तु आवश्यक नहीं।

उदाहरण—

I I I S I S I I I S I S S I I I I I I = 24 मात्राएँ

विविध रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति।
कहुँ चरवी सो चटचटाति कहुँ दह दह दहकति।

यहाँ 24 मात्राएँ हैं और यति 11, 13 से रोला छन्द है।

दिगपाल—12, 12 की यति से 24 मात्रा वाले छन्द को दिगपाल कहते हैं।

उदाहरण—

S S I I I S S I I S I S I I I S = 12 +12 = 24

तू ढूँढ़ता मुझे था जब कुंज और वन में।
मैं खोजता तुझे था, तब दीन के वतन में।।

12, 12 की यति से 24 मात्राएँ प्राप्त होती हैं।

रूपमाला—14 तथा 10 की यति से 24 मात्राओं वाले छन्द को रूपमाला कहते हैं। अंत में गुरु लघु के रखने का नियम है।

उदहारण—

I I S S S I I I S S S I I S S I

चूमता था भूमितल को अर्ध विधु-सा भाल।
विछ रहे थे प्रेम के दृग, जांल बनकर बाल।

गीतिका—14, 12 की यति से 26 मात्राओं के छन्द को गीतिका कहते हैं। चरण के अन्त में लघु एवं गुरु का विन्यास आवश्यक है।

उदाहरण—

I I S S I S S I I I S I I = 26 मात्राएँ

हे प्रभो! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।

26 मात्राओं से युक्त यह गीतिका छन्द है।

हरिगीतिका—16, 12 की यति के साथ 28 मात्राओं वाले छन्द को हरिगीतिका कहते हैं। अन्त में लघु-गुरु का नियम आवश्यक है।

उदाहरण—

S I I I I I S S S I I I I S I S S I S = 28 मात्राएँ

मानस भवन में आर्य जन जिसकी उतारे आरती।
भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।

यहाँ 28 मात्राओं के संयोग से बना यह छन्द हरिगीतिका है।

ताटंक—16, 14 की यति से 30 मात्रा वाले छन्द को ताटंक कहते हैं। इसमें अनिवार्यतः अन्त में तीन गुरु होने चाहिए।

उदाहरण—

S I I S I S I S I I I S S I S S S = 30 मात्राएँ

देव तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे कई रंग की लाते हैं।

30 मात्राओं 16, 14 की यति अन्त तीन गुरु के करण ताटंक छन्द हैं।

सार—16, 12 की यति से 28 मात्राओं वाले छन्द को सार कहते हैं। इसके अन्त में दो गुरु का नियम आवश्यक है।

उदाहरण—

I S I I I I I S I I I I I I I I I S S I I S S = 28

सदा रहत व्रषा रितु हम पर जब ते स्याम सिधारे।
द्रग खंजन न रहति निसि बासर कर कपोल भये कारे।